बलराम के हजारों नाम

मणि मधुकर

राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना

'मुझे एक चाकू दो
मैं अपनी रगें काटकर दिखा सकता हूं
कि कविता कहां है !'

अपने बड़े भाई और बड़े कवि
सर्वेश्वर के लिए
ये कविताएँ
अपनाये की पवित्र उष्णता के साथ,
उनकी इक्यावनवीं वर्षगांठ पर !

दावत

बटोही से उसने कहा : हे बन्ने राजा !
मुझे अपने साथ ऊँट पर विठलाकर
ले चलो
तीन-कम-तीस कोस पर मेरा घर है

बटोही ने धुर-जंगल में खड़ी हुई उस औरत
की तरफ़
नज़र उठाकर नहीं देखा और चला गया

फिर पटवारी आया
सरपंच आया, साहुकार आया और अन्त में
परधानजी आये
औरत ने सबसे पुकार-पुकारकर कहा : कुँवरजी !
साहेबजी ! प्यारे मियाँ !
मुझे भी अपने संग ले चलो
इस वनखण्ड में मैं अकली हूँ और आठों पहर
मेरे कानों में
बच्चों की आवाज़ गूँजती है

वे वहरों की तरह बड़े-बड़े क़दमों से पूरा मुल्क
लाँघते चले गये

उनके पास शायद फ़ुरसत नहीं थी
पर औरत
वक्त से टूटकर अलग जा पड़ी थी
इसलिए वही खडी रही
रात हो गयी और जानवर एक-दूसरे को
दावत के लिए बुलाने लगे

औरत ने उन्हे पहचान लिया
दिन में वे लोग उसे अनसुना कर चले गये थे
उसने एक बार फिर बोलने की
कोशिश की : मालिक ! मेरे बच्चे···
मेरा इन्तजार कर रहे है—मुझे मारो मत !

सुबह औरत वहाँ नही थी
सिर्फ दो आँखे थी
कोटर में धँसी हुई—उसी तरह बेचैन
और प्रतीक्षारत···

कोई-न-कोई जरूर आयेगा और उन्हे घर तक
पहुँचा देगा

काफी देर बाद
एक कौवा आया और उन आँखों को निकालकर
ले चला

सत्ताईस कोस के फ़ासले पर औरत का घर था
बच्चे थे
पता नही क्या-क्या था

मैंने बहुत जानना चाहा, पर माँ ने कहानी का अन्त
नहीं बतलाया
अब कोई कैसे मालूम करे कि उन आँखों का
क्या हुआ, कौवा कहाँ गया, अगली दावत के लिए
जानवरों ने किसको चुना और सबसे अहम सवाल
तो यह कि लायक बेटों ने समूची बस्ती को
बदले के
लिए तैयार किया या नहीं !

एक पैदल बातचीत

सुन चाहे न सुन   अँधेरा एक बुझा हुआ शब्द है मेरे भाई
जो सूखे-सूँसाट दरख़्तो के बीच
फँस गया है
कल जब तू सो रहा था, खिड़कियों के पंख नोंच दिये गये
सड़कों पर उठे कुछ खाकी गुब्बार
कमरों में उगालदान बोलने लगे

मैंने जेब से निकाला अपना हाथ और फिर वह मेरा नहीं रहा
चीटियों के एक जुलूस में चलती हुई
आयी काली, पीली, लाल या पता नही किस रंग की हवा
लोगों के टूटे हुए चेहरे पोत गयी
देख तू जिस लिफ़ाफ़े पर आज टिकट चिपका रहा है
उसमें किसी याचना का दाल-भात है ठंडा
देगची का उबाल नहीं
यह सोचना तेरा बिल्कुल गलत है कि सिर्फ़ डाक में
डालने से कोई डर पहुँच जायेगा कहीं से कही
यानी आँखों की सफ़ेदी से दूर हो जायेगा

भले आदमी, अन्दर जो बैठा है सूदखोर
उससे कब तक बचेगा छूटेगा कैसे   फीते से नाप
कर वह दिन-रात तेरा क़द खायेगा हर अंग को अपने

ढंग से काट-छाँटकर माफ़िक बनायेगा
इसलिए इन तमाम नंगी बेशरम चीज़ों से घिरे
रहने के बावजूद यह जान लेना
ज़रूरी है कि रीढ़ की हड्डी का क्या मतलब होता है
और फेफड़े कितना साथ देते हैं
रोशनी दीठ में है कि पीठ में
होंठों—की—फड़कनों—से किस हद तक बोला जा सकता है
वह जो घाघ इमारत है
क्या उसका काँटेदार दरवाज़ा
तेरी कमजोर अँगुलियों से खोला जा सकता है ?

बार-बार धोखे से छला गया है तू सही है लेकिन मुझ पर
यों सन्देह मत कर भरोसा रख कन्धा जोड़
मैं तेरी 'भासा' के साथ हूँ
ऐसा समझ ले कि भीड़ के शोरगुल में
खोयी हुई तेरी ही औकात हूँ !

गवाही

जख़्म जब सूखने लगा और खून ने एक
ग़ैरवाजिब चुप्पी अख़्तियार कर ली तो वे मेरे सिर पर
चाणक्य का अर्थशास्त्र तानकर खड़े हो गये

मोमबत्तियां जल रही थीं जलसे में
मोम कुछ दरारों में गिरकर शासन की आत्मकथा तक
पहुँच रहा था
जिसमें मुहावरों की बंजर ज़मीन थी या मोटी चमड़ी की

चाहने-भर की देर थी

मैं भी कुछ निकम्मी हड्डियों और अनाथ खुशियों को
ठेले में भरकर
वाँबियों के बीच से रास्ता बना सकता था
सलाम ठोंक सकता था   क़वायद कर सकता था
ख़ाकी फ़ैसलों के सामने

लेकिन
मेरे जिस्म में एक खाली पेट और मवाली अहसास था
इससे पहले कि कोई बेसब्री का अनुवाद करे
चिड़ियों के आगे चालाकी के दाने बिखराये

मुझे उन हादसों में
उतरना था जिनके भीतर   ज़िन्दगी की साबुत
मुस्कराहटें उगती हैं

यह जानते हुए कि ज़ख्म एक खुले मर्तबान
की तरह मैदान में रखा हुआ है
मैंने उन खुदगर्ज हर्फ़ों के खिलाफ़ गवाही दी
जो रोजमर्रा की तक़लीफ़ों को
नगरपालिका की ओर धकेल रहे थे

वे उस वक्त भी मेरे चारों ओर थे
वे आज भी मेरे चौतरफ़ हैं   उनकी गुर्राहट
कपड़ों की सलवटों में खो गयी है
और मेरी नफ़रत मेरी बेचैनी सूखे ज़ख्म की भाँति
सख्त   गाढ़ी   खुरदरी हो गयी है !

रिकार्ड प्लेयर

कहीं से धुआँ कहीं से झींगुर कहीं से गमले
काया काँटों में खिल गयी, अनाज
के बोरे बह रहे हैं बाढ़ में
अर्धरात्रि रहस्य है और संगीत एक स्वतन्त्र उद्योग
तस्वीरें मलिन द्वीपों में उड़ रही हैं

काला तवा काला तवा काला तवा
सब-कुछ डूब रहा है कोलतार में, डेढ किलो
बच्चा और तीन किलो सर्दी पेट में
लिये दौड रही है एक पूर्ण धुन

कुछ विस्तृत नींदें है उनमें हाथीदाँत की मीनारें
चश्मे की क्यारियों में
काँपती हुई कोंपलें, सहसा एक अँगड़ाई उठी
अँधेरे में खुले दो होंठ
कौंध गयी सुन्दर दाँतों की रोशनी

लोग पूछकर आते हैं कमरे में
बिना पूछे चले जाते है
लाओ उस आलसी को पकड़कर लाओ
जो नथुनों में तम्बाकू बजा रहा है।

जिन आवाज़ों से भरा हुआ है मकान
वे गुब्बारों की तरह खाली हैं निष्फल
उन्हें कोई ब्लेड से चीर रहा है फोड़ रहा है
जो कुछ अदृश्य है उसे एक हमलावर हाथ
तल्खी से तोड़ रहा है।

मुहावरों के मैदान में घोड़े

तुमने सुनी है पेड़ों की हँसी
और घोड़ों
की हिनहिनाहट ?

उस रोज़
जब वे हरे-हरे और भरे-पूरे
पेड़
सुबह से शाम तक हँसते रहे
तो घोड़े वहाँ नहीं थे
सिर्फ़ ऋतु थी
बार-बार किसी आशंका में रपटकर
गिरती हुई

फिर ऐसा हुआ कि पेड़ों की
हँसी में उगने लगे काँटे—
गुदगुदाने वाली हवा मन्द-मन्द डरती हुई
उतरने लगी सीढ़ियाँ

और घोड़े आ गये
अपनी टापों से मुहावरों के तमाम
मूँगिया मैदान रौंदते हुए

हाय, घोड़ों ने नहीं सुनी पेड़ों की ताज़ा हँसी

सुनो, अगर सुनी तो सूखे पत्तों की
मरी हुई आवाज़—
जैसे कोई बेवा रो रही हो बियाबान में !

उसने मुझे देखा

उसने मुझे देखा
तो उठ खड़ा हुआ
सिर झुकाये
चुपचाप
पीछे मुड़ा
—तुरन्त बाहर चला गया !

कक्ष की प्रत्येक वस्तु
मेरे आगमन से ईर्ष्या करती रही
होंठों पर—स्वागत !
मैं गर्व के रंगबिरंगे ताज़िये
कन्धों पर रखे
आरामकुर्सी पर प्रतिष्ठित हो गया !
पीठ दुहरी हो गयी
रीढ़ की हड्डी
धनुपाकार विवशता मे बदल गयी
तब सहज औपचारिकता से
मैंने हँसने की कोशिश की
मुझसे हँसा न गया
आसपास बहुत-से अपनत्व थे
पर बोलने की समस्त चेष्टाओं से

मैं हार गया

आखिर एक दिन
थककर, घुटकर
असहाय-अमुखर
जब मैंने रोना चाहा
आँखों की सफ़ेदी में
कहीं नमी नहीं थी
आँसू सूखकर
पुतलियों पर
घावों की तरह
उभर आये थे—

इसी तरह
बैठे-बैठे
जाने कितने बरस बीत गये हैं
ताज़िये
टूटकर नीचे गिर गये है
सजीवता के सभी क्षण
अब बिल्कुल रीत गये हैं
और मुझे अक्सर
वह चेहरा याद आता है
जो मेरे यहाँ आने पर
बिना कुछ बोले
बाहर चला गया था !

लेख

हम अब अपनी-अपनी रेत से घिरकर
फीके और फ़िज़ूल हो जायेंगे। एक हारे-थके प्रश्न के पास
डरे हुए-से बैठेंगे या प्लेट में रखकर कोई
काल्पनिक रोमांचक दृश्य
धीरे-धीरे खायेंगे। बुजुर्ग तो कहेंगे ही कि
सब की सुरक्षा सब का भरण-पोषण होना चाहिए—और जो
आज है वह कल नहीं रहेगा
(दोस्त मेरे, तुम लिहाफ में दुबकी हुई उमस को बच्चों की तरह
फुसलाओगे नहीं। हर चीखती
हुई आकृति
का संग पाने के लिए तुम्हे घास
और वासना के मैदान
से गुजरना होगा, क्या तुम सोचते हो कि
स्तुतियों की हवा तुम्हें सच्ची हँसी तक ले जायेगी ?)
पर हमें अपने निहत्थेपन को
लेकर चौकने
की जरूरत नही है अनुभव में जो राग निर्जीव और
कठोर हैं हम वहाँ किसी बड़ी आकांक्षा या फ़रिश्ते की
तलाश नहीं करेंगे
क्यों मानें किसी का हुक्म कि उस काले तख़्त को कन्धों
पर रख लें आलसी शब्दों

में फैलकर जो ग्रासमान हो जाता है ?
(सुनो हे मणि मधुकर, तुम मणिधर क्यों नहीं हुए—
अपने सम्बोधन में ? यह जानने के लिए ही कि प्रेम
करनेवाली औरत प्रेमिका नहीं होती है और
खाने-पीने, कपड़े बदलने और सोने की जगह का नाम
घर नहीं है !)

सामना

माँ की अँगुली थामे हुए
भाई के साथ-साथ
पिता के बिल्कुल पीछे
चल रहा था वह

अकेला और अनमना

एक छोटी-सी उम्र
और इतनी कड़ी धूप से सामना

हवा गुम
पेड़ ग़ायब
रास्ता लम्बा
उसी की तरह चारों ओर से
कटा हुआ

शायद कहीं कोई पँखेरू
सन्नाटे के
सख्त दबाव के बावजूद
चोंच खोले और उसे
अकेला न रहने दे !

लड़ाका

मेरे भीतर जो थक गया है
वह मुझसे लड़ रहा है
और मैं उसके आगे हाथ जोड़ता हूँ
भाई, मुझे माफ़ करो

मुझमें ताकत नही
मुझमें शब्द नही
मुझमें आवाज़ नही

लेकिन वह ज़िद्दी
कहाँ मानता है मेरी बात
वह जो थकान से चूर-चूर है खुद
मुझसे दिन-रात लड़ रहा है !

नर्तकी

अपने अँधेरे अपने कन्धे अपने जूते
कुचलते सज़ा-सी
झेलते हुए छोटे-बड़े क़द एक हवाबन्द
सूराख में शामिल
इकट्ठे अधेड़ शरीरों का कोरापन

कोट खुद पहने रहो या कुर्सी को पहना दो
फ़र्क नहीं तभी वह दिखी
जैसे फ़ोन बूथ से बाहर आयी हो ताजा
टखनों में नदी बालों में सूर्यास्त
काँच-सी त्वचा
कपड़ों की रंग-बिरंगी सलवटों से परेशान

भीतर सिटकनी बन्द होने और खुलने के
बीच की खिन्नता सरेआम उदासी
उमड़ते असंख्य अचरजों का धीमा वार्तालाप
देगा मुँह में स्थायी होती हुई सिग्रेट
में अभी कोई अर्थ
दिखलायी देगा किसी चीज़ से उलझकर
किसी चीज से सुलह करता हुआ

कितनी कठिन होती है अपनी साँसों को
महसूस करने की विवशता, जब होंठ
हँसते-हँसते पिघलने लगें

एक दुष्ट तलवार तनी हुई, कहाँ आ पहुँचा
मैं कुछ भी ढूंढता ढब या ढाबा
जिससे अपनी स्मृति में खिंची हुई फड़क और
उथल-पुथल को जोड़ सकूं फेंक दो इस गन्ध
इस वेचैनी को कुएँ में—
नाचते हुए पाँवों को फ्रिज में रख दो!

वापसी

[सिन्ध के शरणार्थियों के लिए]

वे अब लौट रहे हैं इस अँधेरे से
उस अँधेरे में, जैसे प्रेत
उनके पीले चेहरे पाँवों की तरह लम्बे हो गये हैं
और पाँव
किसी तीसरे मुल्क की तपती हुई जमीन पर
पड़े हैं चुपचाप   भाषा सिर्फ़ होंठों के लिए
होती है तलफलाते तलुवों के लिए नही
अलबत्ता कुछ सन्धिवाचक शब्दों को एड़ियों के नीचे
रौंदना जरूरी है

पंखे से पीठ रगड़ती हुई एक स्त्री
छप्पर की ताड़ियों में झाँककर देखती है उदास—
वे अब लौट रहे है बेआवाज़
कहाँ जा रहे हैं किसी को पता नही
एक आँख इधर है दूसरी उधर
बीच में बँटवारा करती हुई नाक, निर्लज्ज
जिसकी नोंक पर एक लाल मस्सा धीरे-धीरे हँस रहा है
तुम उसे क्या कहोगे क्या नाम दोगे
हर लड़ाई के बाद वह फफोले की भांति फूल आता है

जीवन है रक्तपात मौत गहरी शान्ति
ओम् शान्ति शान्ति मैं वहस में छिलती हुई त्वचा पर
रूई के फाहे रखने लगता हूँ

पत्थर के बने उजाड़ चूल्हों पर कौवे उड़ रहे है और
केवल जूठन उन्हें पहचान रही है
चीटियों की कतार चुग रही है अनाज के दाने मानो
भूख से बेहाल फौज की टुकड़ी
जीत का फटा हुआ सेहरा किसी मकान की ऊँची बल्ली
पर टँगा है ताकि जब-तब
हवा उसे छू सके, आगे-आगे ढोर है पीछे-पीछे आदमी
फुसफुसाहटों के गुच्छे
अँगरखों-ओढ़नियों में उलझ गये है
घोड़े पर सवार जंगल
पृथ्वी को पत्तों से ढँक रहा है और अधबुझे शरीरों
को ईंधन से !

सूखी जड़ें शिराओ में उतर गयी हैं
समय लोहे की टोपी लगे खुरों से खोद रहा है मटियाले
दृश्य, और बलवान टीले और, इकट्ठे दरख्तों का
निहत्था सन्ताप

सिरकी तले सोयी हुई वह चेचक के नगे हर्फोंवाली लड़की—
पढ़ो पहले तुम उसे पढ़ो धैर्य जुटाकर
वह रेत पर ठहरा हुआ शिलालेख है
कलिंग-विजय का या कोई दस्तावेज दुःस्वप्न

उसकी मुड़ी-तुड़ी अँगुलियाँ फैल
गयी हैं पगडण्डियों की तरह मैदानों मे
महाभारत में जाने कहाँ-कहाँ,
हारे हुए पाण्डवों का जुलूस उन पर से गुजर रहा है

हाँ भई हाँ, वे जुआ खेलते रहे हर बरस व्यग्र और विवश
कभी यहाँ कभी वहाँ
अपनी जमीन अपनी खोयी हुई दुनिया को पाने के लिए
सब-कुछ दाँव पर लगाकर
अब वे हर चीज खो चुके है अपनी साँस के सिवा और
जा रहे हैं गुमनाम
किसी अन्धे ओझल अज्ञातवास की तलाश मे

माथे पर कालिख है फेफड़े छलनी हाथ अनाथ
गोलियों की तरह सनसनाता हुआ सन्नाटा सामने ठीक सामने
धँस जाओ इस मनहूस सन्नाटे में
कोई विकल्प कोई ठौर-ठाँव नही मेरे संगाती ! तुम्हें बार-बार
लौटना है बर्बर माँद में
अन्त प्रतीक्षा का होता है, यातना का नहीं
एक दफ़ा फिर तुम्हें कटघरे में खड़ा होना है मुजरिम बनकर
खामोशी को शामिल करना है बयान में
सज़ा या घुटनों को तोड़कर दी गयी मुक्ति, क्या फर्क है ?
दया की भीख सूराख भर देती है हथेलियों में
और खंजर वहीं खुलते है जहाँ उनका खुलना तय है
बोलो वीरा ! जल्दी से बोलो 'फेरूँ मिलाँला' या 'खुदा हाफ़िज'
या कुछ भी
मैं तुम्हारे उस गुस्से को सुनना चाहता हूँ
जो दाँतों और दुनिया के बीच बेतरतीब लफ़्ज़ों को चबा रहा है

राम-राम ! मिलेंगे हम फिर मिलेंगे क्योंकि हमारी शक्लें
मिलती हैं आकांक्षाएँ मिलती हैं और वे मुट्ठियाँ…
जो अलाव सुलगाने से पहले आग को
अपने में बन्द कर लेती हैं—
कमजोर मत बनो उस दीवार से लड़ो जो हमें अलग करती है
बेज़मीन हो तुम   पर अकेले नहीं !
तुम्हारी वापसी आँधी की वापसी है
कोई डर नहीं लौट जाओ !
रेत सब जगह एक-सी है
और वही हमारी आखिरी ताक़त है !!

इलाक़ा

अपने जिस्म को बिस्तर की तरह फैलाकर
वह रौशनदानों की तरफ
एकटक देख रही है
अब तुम उसके साथ सो सकते हो और
खजहे कुत्ते की भाँति
दीवार से रगड़ सकते हो अपना शरीर

खाली ताल में जैसे मेंढ़की की टाँगे आकाश की
ओर उठी हुई—
गिरो तुम गिरो वे तुम्हे थाम लेंगी
इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम आसमान
नही हो
और तुम्हारी बगलों से बारूद की बजट की बदअमनी की
बू आती है

तन से बेदखल होना कोई घटना नहीं
अलबत्ता वक़्त के
उसी हिस्से से अंगारे को नाभि में पकड़ लेने का
साहस शुरू होता है
नब्ज में बजने लगता है धुंधला-सा इन्तजार
और दुश्मन को शिथिल करने के बाद

उसके सभी मोर्चों को रौंदा-रुलाया जा सकता है

वह कपड़े समेटकर खड़ी होती है और शनैः शनैः
मरते हुए देखती है उस कीड़े को
जो पार्लियामेंट स्ट्रीट से चलकर आया था औरत के
अद्‌भुत इलाके में !

माथे पर खुलती हुई आँखें

आँधियों के साथ चीखता है प्यास का पागलपन
और गन्ध कोई निर्णय नहीं लेती। एक
टूटी हुई बाँसुरी पानी पर तैरती रहती है और डूबने
वाले आदमी का सहारा नहीं बनती

सब-कुछ आकाश है, सब-कुछ का आकाश
पतंगें उड़ती हैं, नदियाँ भी। पृथ्वी किसी का आधार
नहीं है। पीले, सफेद
      छालों की तरह उठते और फूटते हुए दिन।

वस्तुएँ हैं और वे मुझमें हैं वस्तुओं के द्वारा, संचरणशील:
—मेरे इरादों पर हावी। उनके भुजंग सत्य
लिपटे हुए हैं पूरी व्यवस्था के चारों ओर। तारल्य के
विस्तार का वह नीलापन
जो सपने की तरह घटित होता है बज उठता है
वेश्या के स्थिर हाव-भावों में और ठहर जाता है लँगड़े
सम्बन्धों की भाँति। प्राणों में एक उन्मत्त, क्षुब्ध पृष्ठ है
जिसे वर्णमालाओं के देश से निर्वासित कर दिया गया है।

उजाले में मैं उन चमकती हुई आँखों
को ढोता हूँ जो सुबह जगते ही मेरे माथे पर खुल जाती हैं।

कोई नहीं है ऐसी भाषा
जिसके लिए सोच सकूं कि यह
मुझे अदालत में खड़ा नहीं करेगी
लय और अलय के मध्य फैली छोटी-छोटी दुनियाओं में भटक
आता हूँ—
एक अनिवार्य बदले की भावना से। मुझमें से छनकर जाती है
जो सांस—
किसी की जीवनी का कारण नहीं बनती।

जानता हूँ मैं एक षड्यन्त्र के सहारे
चलता हूँ। मेरी अपनी कोई गति नहीं है। इसीलिए मेरे पीछे
न पदचिह्न बनते हैं, न कोई पगडण्डी पुकारती है!

माथे पर खुलती हुई आँखें

आँधियों के साथ चीखता है प्यास का पागलपन
और गन्ध कोई निर्णय नहीं लेती। एक
टूटी हुई बाँसुरी पानी पर तैरती रहती है और डूबने
वाले आदमी का सहारा नहीं बनती

सब-कुछ आकाश है, सब-कुछ का आकाश
पतंगें उड़ती हैं, नदियाँ भी। पृथ्वी किसी का आधार
नहीं है। पीले, सफ़ेद
छालों की तरह उठते और फूटते हुए दिन।

वस्तुएँ हैं और वे मुझमें हैं वस्तुओं के द्वारा, संचरणशील
—मेरे इरादों पर हावी। उनके भुजंग सत्य
लिपटे हुए हैं पूरी व्यवस्था के चारों ओर। तारल्य के
विस्तार का वह नीलापन
जो सपने की तरह घटित होता है बज उठता है
वेश्या के स्थिर हाव-भावों में और ठहर जाता है लँगड़े
सम्बन्धों की भाँति। प्राणों में एक उन्मत्त, क्षुब्ध पृष्ठ है
जिसे वर्णमालाओं के देश से निर्वासित कर दिया गया है।

उजाले में मैं उन चमकती हुई आँखों
को ढोता हूँ जो सुबह जगते ही मेरे माथे पर खुल जाती हैं।

कोई नहीं है ऐसी भाषा
जिसके लिए सोच सकूँ कि यह
मुझे अदालत में खड़ा नहीं करेगी
लय और अलय के मध्य फैली छोटी-छोटी दुनियाओं में भटक
आता हूँ—
एक अनिवार्य बदले की भावना से। मुझमें से छनकर जाती है
जो साँस—
किसी की जीवनी का कारण नहीं बनती।

जानता हूँ मैं एक षड्यन्त्र के सहारे
चलता हूँ। मेरी अपनी कोई गति नहीं है। इसीलिए मेरे पीछे
न पदचिह्न बनते हैं, न कोई पगडण्डी पुकारती है!

पीढ़ी हर पीढ़ी

१

एक हाथ से ताली बजाते हुए
उसने सहसा पीछे मुड़कर देखा और मेरे चेहरे से पूछा—
तुम्हें अपनी आँखों की याद आती है अब ?

—नहीं, यह दिव्य दृष्टि पाने के बाद
मैं उस पुराने शरीर और समय को भूल गया हूँ
अब मुझ में कौंधता नहीं है पिछली पगडण्डियों का उजास
न जीवित है किसी सराय का दृश्य···
एक काठ की तलवार है बगल में लटकती हुई
और उसे दिन-रात सहलाने के कौशल में
मैं तुम्हारे साथ हूँ !

२

वह खुश हुआ
बोला—यही तरीक़ा है जीने का
इस पिंजरापोल में,
चिन्ता मत करो कि किस ठौर
किस ओर-छोर पर खड़े हो
चिन्ता का घुन खा जाता है तन-मन को !

न रत्ती-भर राई में शामिल रहो न दुहाई में

एक चुप सौ बकबकियों को हराती है
ग्रौर जो बोलता है उसे साँड़ के सींग पकड़ने का
जोखम-जिम्मा उठाना पड़ता है···

३

मैंने उसे कुछ सुना
कुछ नहीं सुना ग्रौर वेदाँत मुँह में चने भरकर
चवाने की कोशिश करता रहा
सोचता रहा कि सूखे पेड़ पर क्या ग्रसर होता होगा मल्हार का
टटी हुई चरखी के तकुए पर कैसे लपेटा जाता होगा सूत
ग्रौर इस तरह लकवे से टेढा गयीं उँगलियों के जरिये
निकाला गया घी—
कितने लोगों की थाली तक पहुँचता होगा ?

४

लेकिन मैं तो उसका ग्रनुयायी था
इतनी फ़ुर्सत कहाँ थी मुझे कि माथे पर जोर डालूँ
ग्रौर किसी नस को तड़कने दूँ, भड़कने दूँ ?
हर हाल में समझ को वनाये रखना था
जोड़ते रहना था संगीत के सरोवर ग्रौर
ज्वालामुखी के ग्रर्थ को निरन्तर
ग्रासमान की गन्ध से बचाना था
उन परिन्दों को
जो बीट-भरे घोंसलों मे बन्द थे
ग्रौर जिनके ग्रभी पंख नहीं निकले थे

सबसे मुश्किल काम यह था कि ग्रपनी झेंप को मिटाते हुए
शर्म को छुपाते हुए

खास ड्योढ़ी के सामने खीसें निपोरते हुए
हौसला क़ायम रखना था हर बार और
चढ़ना था ऊपर, लगातार ऊपर
जाना था उस मीनार के आखिरी गुम्बज तक—
होंठ सीकर
पानी पीकर
चौतरफ चीख रहे थे बटेर और तीतर

वैसे एक सुविधा थी
कि जहाँ ऊँघ का झोंका उठता था, आलस उमड़ता था
बिछौना तैयार था
जब तक नींद आये, सोते रहो
फिर आगे बढ़ो···लड़खड़ाते-बड़बड़ाते हुए
आगे बढ़ो !

५
तभी नफ़रत में उबलते हुए कुछ शब्द
उछले और मेरे ललाट पर चिपक गये
जोर से थूक दिया किसी ने मेरे चेहरे पर
गरम-गरम कोलतार पोतकर मुझ पर हड़-हड़-हड़ हँसने लगा कोई

और उसकी वह विकराल हँसी
आँधी की तरह समूचे शहर के दरवाजे भड़भड़ाने लगी

मैं चौंका
हालाँकि चौंकना मना था मेरे लिए
थोड़ा घबरा गया
यह जानते हुए भी कि घबराये हुए योद्धा लड़ाई हार जाते हैं।

६

मुझे किसी की पदचाप सुनायी दी अचानक
हाँ, वह मेरे आस-पास ही उठ रही थी कहीं
शायद बायीं तरफ़ या ऽऽऽ
भय से भीग गया मैं
एक ठण्डी झुरझुरी तैर गयी रीढ़ के आर-पार

तो कोई साथ चल रहा था मेरे
एकदम निकट
पल-पल मुझ पर निगाह रखता हुआ !

—नहीं, मैं उसे नहीं पहचान सकूंगा...
पहली बार मुझे अपने अन्धेपन का अहसास हुआ
और उस काई का जो एक हरियाली का भ्रम देकर
मेरे भीतर जम गयी थी

तभी एक फुसफुसाहट घुस गयी
मेरे कानों में—रुक जाओ, यहीं रुक जाओ
तुम कहाँ जा रहे हो यों अदीठे होकर ?
वह मीनार जिस पर चढ़ने के लिए तुमसे कहा गया है
कहीं नहीं है
किसी को नज़र नहीं आयी है वह आज तक
वह एक धुन्ध है
और तुम्हें धुन्ध में बनती-बिगड़ती आकृतियों
के बीच छोड़ दिया गया है !
मेरे पैर थम गये
पथरा-सा गया मैं सच्चाई के रू-ब-रू !!

७

फिर मैंने मोरचंग पर एक धुन सुनी
फिर मैंने स्वयं को
सन्नाटे की सख्त खुरदुरी पर्तें तोड़ते हुए
ग्रौर एक सफेद-शर्मनाक केंचुल
छोड़ते हुए देखा

फिर मैंने बहुत देर तक बहुत-कुछ देखा
ग्रौर यह 'महसूस' किया
कि 'देखना' क्या होता है !

फिर मैंने ग्रपने लिए एक सही शक्ल की तलाश की ग्रौर उसे
मिट्टी की सोंधी-सगुनी सुगन्ध में डुबो दिया

फिर मुझे खुद के लिए कुछ पाने
कुछ खोने की फिक्र न रही
ग्रौर मैं उन लोगों के संग—
जो रोमाकुरों की भाँति जुड़े हुए थे मेरे वजूद से,
उस जंगल को पार करने लगा
जिसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी
पार करना जरूरी था सबके लिए !

पुरखों ने साफ किया था वह जंगल
नरभक्षी भालू ग्रौर भेड़िये थे जिसमे
धूर्त सियार ग्रौर काले गिद्ध थे—
ग्रब···हमे उनसे निपटना था
ग्रपने ग्रसली ग्रौजारों
ग्रौर वसीयतनामे के उजले हर्फ़ों पर
भरोसा रखते हुए !!

समरकाल : १

शत्रु चीख रहा है
कितनी खुश है उदासी सड़क नापती हुई

नथुने और हथबाजा
और पसलियों की सारंगी बजाता हुआ वह
चढ रहा है पहाड़ी पर

कितना खूबसूरत है समूचा दृश्य और
हँसी का वह लोथड़ा
जो अचानक होंठों से गिर पड़ा है

दम निकल जाने के बावजूद
दमदार है गले में अटकी हुई साँस
कितनी निडर नजर आ रही है डर की डफली
जबकि शत्रु घूम-फिरकर आ गया है
फिर मैदान में

शत्रु ने कहा कुछ याद करो
और लोग बरसों-बरसों रटे हुए पहाड़े तक

भूल गये हैं

'भूल जाने के लिए बधाई!'
वह उन्हें नयी गिनती सिखला रहा है
दो कटे हुए हाथ सीधे रखो, बनेंगे ग्यारह
तब एक सिर उतार लाम्रो कहीं से
ग्रागे धर दो उनके
दायीं ग्रोर, एक सौ दस—

कितना कौतुक है काई भरी ग्राँखों में
जबकि शत्रु
मित्र बनने की कोशिश कर रहा है!

समरकाल : २

वे गये और उस हज़ार-हज़ार
आँखोंवाले
चेहरे को जंगल में
किसी दरख़्त पर लटका आये

अँधेरा खड़ा रहा वहीं
पहरा देती रही उसकी बन्दूक
नेत्रहीन

धीरे-धीरे वह चेहरा
आसपास की चीज़ों को देखने लगा
ग़ौर से

रेत की जानी पहचानी गन्ध
गाछ
चिनगारियाँ-सी फेंकते हुए जुगनू

फिर उसे ख़याल आया
मेरा धड़ कहाँ है
क्या वह शहर के परकोटे की परछाईं तले
गढ़हे में पड़ा सो रहा होगा

वह चिल्लाया धड़ मेरा धड़ लेकिन
चेहरा चाहे वह दरख़्त की डाल पर हो
या भाले की नोंक पर
कितनी दूर तक पहुँचा सकता है
आख़िरकार आवाज !

एक चिड़िया कहीं से आयी
चहकती रही चेहरे के इर्द-गिर्द
फिर अपनी चोंच का दाना
उसके खुले हुए होंठों में रखकर
उड़ गयी !

तीन आदमी

तीन आदमी एक रेतीले रास्ते पर चल रहे है
और रास्ता हर पाँचवें मिनट के बाद
कुछ आगा-पीछा सोच कर
उनके पाँवों से पीछे छूट जाता है

अलग होने का यह तरीक़ा सुखद है क्योंकि हर
सुख रेत में छिटककर
किसी नामालूम-से चिन्ह को गढ़ पाता है केवल

सब जानते हैं यह गढ़ना किसी किले का गढ़ना
नही है न 'मतदाता' से 'जन्मदाता' बनना
अलबत्ता पहला आदमी जब शर्म से जमीन
मे गड़ता है तो इसी तरह गड़ता है साल-दर-साल

दूसरे आदमी को अचानक हाजत लग जाती है
पता नहीं कब
पता नहीं कहाँ
वह चार दीवारें अपने साथ लेकर चलता है
जहाँ पेट में गोले की गड़गड़ाहट हुई
छुप कर बैठ जाओ और धीरे-धीरे शरीर को
ढीला छोड़ दो आवागमन से परे हटते ही
तमाम दुःख दूर हो जाते हैं

सूरज आकाश में घोड़े दौड़ाकर थक गया है
हवा धूप में चित्त लेटकर इतमीनान से
हाँफ रही है हालाँकि मोड़ पर खड़े पेड़ को
अभी उम्मीद है कि रथ रुकेगा नहीं
कोई-न-कोई लगाम थाम लेगा
पहला दूसरा या तीसरा
पृथ्वी वीरों से खाली नही हुई है

पहाड़ और प्रजातन्त्र के बीच में अँधेरा सिर उठाता है
जैसे फाइल पर साँप का फन
तीसरा आदमी रास्ते को अँगुली में लपेटकर
देखता है एकटक—
शायद वे दोनो उसे आसपास नज़र आ जायें

लेकिन देश में ससुरी सगरी सरकारें ढह चुकी हैं और वे अभागे
उनके मलबे मे फँसकर अपने-अपने
शहर को सुन्दर बनाने का नक्शा ढूँढ रहे हैं

अब तीसरा शाम के आखिरी बादल में हाथ डालकर
कोयले का टुकड़ा निकालता है
और अपने हिलते-डुलते दाँत माँजने लगता है

पारटी में भरती होते समय उसने एक परचे में
पढा था कि
आदमी के दाँत उसकी आँतों की हिफ़ाज़त रखते हैं

गृहयुद्ध

अक्सर आँखें खोलते ही सामने की दीवार
कुछ पीछे हट जाती है और
लगता है सुबह को जहाँ होना चाहिए था
वहाँ नहीं है

रेल के डिब्बे की भाँति कमरा
मुझे लेकर
एक सुनसान रास्ते पर आगे बढ़ जाता है
अजीब-सी हालत में
कावरा से सुना हुआ सरोद या अदामोव
के अधजले नाटक का
कोई अधबुझा संवाद होंठों से तोड़कर
मैं पायजामे की सलवटें ठीक करता हूँ

माथे की सलवटें अधिक सख़्त अधिक गहरी
होकर
अँगुलियों के पोरों से जुड़ जाती है

न चाहते हुए न देखते हुए भी
मैं देखता हूँ कि शरीर से शाखाएँ फूटने
लगी है चेहरा जालों

लाल कमीज

एक क़द्दावर शरीर
अपनी लाल कमीज को दोनों हाथों से
नीचे खींच रहा है ताकि वह उसके घुटनों को ढँक ले

घुटने नंगई की धूप में चमक रहे हैं
और लोग चिन्तित हैं कि अगर यह दृश्य अधिक देर
तक कायम रहा तो सूरज भगमान
को 'किरोध' आ सकता है

रामसरूप की बुआ छत पर आयी
तार पर लहँगे दुपट्टे बनियान सुखाने के लिए
डाल गयी
तार भर गया
कपड़े बच गये और नसवार की चुटकी
पर टिकी हुई बुआ की समझ में नहीं आया
कि वह भरभूर गुस्सैल जाड़े के बावजूद
कैसे बच गयी

कपास की मण्डी चढ़ते-उतरते भावों की धूल से
ढँकी हुई है
रसोईघरों से उड़ती हुई मसाले की गन्ध सुबह के

बेफ़िक्र बिस्तरों में घुस जाती है और एक साथ
कई गाउन नाश्ते की मेज पर टूट पड़ते हैं

कुछ नीली धुनों और गोरे फ़िकरों के आलजाल
में उलझ गया है 'स्वीमिंग पूल'
नहानेवाली लड़कियों ने क्लब के रजिस्टर में
लिख दिया है कि उन्हें कपड़ों की जरूरत नहीं

चौराहे के बीच खड़े हुए बुत का भारी लबादा
अचानक फिसलकर गिर पड़ता है ज़मीन पर
दर्शक हतप्रभ हो उठते है अपने भूतपूर्व
नगरपिता को नग्न पाकर फिर प्रशंसा से
भर जाते है रफ्तः रफ्तः
—जब तक वह जिये कोई उनकी इस 'भीतरी'
सुन्दरता को नही देख पाया

आह नगरवासियो ! तुम्हारा दुर्भाग्य
तुम उसे बूढा समझकर मकरध्वज खिलाते रहे
जबकि वह दाई के सामने
टब में लेटा हुआ एक शिशु था निर्वसन

अफ़सोस को खम्भे पर टाँग कर
एक क़द्दावर शरीर सीधा तन गया है और
अपनी लाल कमीज उतारकर सूरज को
सौंप रहा है ताकि वह धूप का रंग बदल सके

वह होंठ काटता हुआ

उसने पानी पिया
बालों में कंघा किया दो-तीन वार
पतलून और कमीज के सम्बन्ध को बारीकी
से परखा
टूटे तस्मोंवाले जूते पहनकर कुछ सोचते हुए
फिर गली में आ गया
अपनी गरम-गरम साँसों के संग
उड़ता हुआ वह पंखहीन

अब वह घर से बाहर था यानी एक बड़ी
दुनिया के भीतर

चारों ओर शोर था जैसे भूकम्प आ गया हो
राजा मर गया हो
राजकुमार खो गया हो
सुहागिन रानी को दुहाग दे दिया गया हो

उसने अनुमान लगाया और गश्ती टुकड़ियों की
चहल-पहल देखता रहा :
वे फूलदानों में सजाकर बाँट रही थीं
आतंक के इश्तहार
नमूने नागरिक-शास्त्र के

वह होंठ काटता हुआ आगे बढ़ा
एक नुकीला पत्थर फेंका उसने सबसे ऊँची मीनार
के गुम्बज पर जिसका कांच
उसकी आँखों को चौंधियाकर अन्धा बना रहा था

कांच टूटने की
आवाज़ हुई कि मशीनगन बोल उठी
तब एक भरपूर सुर्ख तारे की तरह
वह भी टूटकर गिर पड़ा अपने हिस्से की
लहूलुहान ज़मीन पर !

क्यों नहीं उठाता है कोई

इस तरह कब तक चलेगा
केश झर रहे हैं, झुर्रियों को टटोलो तो गुम
हो जाता है हाथ और
किसी कछुए की आँख को चकित कर देने की हद तक
बज रहा है तबला जबकि डर के मारे
खाँसी दुबकी हुई है फेफड़ों में

कब तक चलेगा यह न खाँसना, न हँसना
क्यों नहीं उठाता है कोई
रोती हुई बच्ची को
क्यों पथरा गयी हैं तुम्हारी पुतलियाँ
कि नज़र मुजरे में नाचती हुई औरत के
पाँव थामकर
रुक गयी है, समूचे दृश्य में चुभ गयी है

किरच गड़ी रहे, बच्ची पड़ी रहे
खून के घूँट पीकर भी तुम इतना ही सोचो
कि अँगूठी सलामत रहे
हीरे की कनी जड़ी रहे
चाहे अँगुली गल जाये, जख्मों से भर जाये दुनिया

गली तुम्हारे घर तक आती है
रोज़ आयेगी और तुम्हें समझायेगी कि कचरे के
ढेर पर ध्यान मत दो
बदबू तक नाक क्यों ले जाते हो
न देखो गढ़े में गिरते हुए गरेबान की तरफ़
अच्छी-अच्छी प्यारी-प्यारी गुलगुली-चुलबुली
चीज़ों को याद करो

लेकिन यह याद करना···
इस तरह कब तक चलेगा मेरे मित्तर !

रौशन फूफी

आँधी अपना रास्ता बदल रही है
जैसे नदी की बाढ़
और मैं नींद की घनी अनमनी परछाइयों के बीच
उजाले का एक गोल कुण्ड देखता हूँ
कुछ सूखी डालियाँ
कुछ बूढ़े पैरों की आहटें
सुग्गे की चोंच-सी खुशी—सुर्ख और सहमी हुई

वह उजाला रौशन फूफी के चेहरे पर है

रौशन फूफी जो अन्धी है और जिसने हमेशा अपने
आगे-पीछे अँधेरे की पदचाप सुनी है

कितनी ही बार गया हूँ मैं बाँसवन के पार
उस भरे-भरे होंठोंवाली
तवायफ़ की तरह तरल और तन्नाट घाटी में
जहाँ एक पेड़ हँसता है दूसरा रोता है
तीसरा चुपचाप बिखेरता है हँसते और रोते हुए फूलों को

आज वह तमाम हरापन सहेजकर रौशन फूफी
अपने अनन्त दु:खों की दुनिया को मशाल की मानिन्द
उठाकर धीमे से पूछती है—बताओ मुझे बताओ
कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है...
आंधी किस रास्ते से होकर गुज़र रही है !

नींद में वसन्त की याद

रोते हुए। पीले रूमाल से
सिर ढँककर रोते हुए वसन्त को मैंने देखा रात,
गहरे दुःख में अस्त-व्यस्त। पहले वह सड़क की मटमैली
तख़्ते की तरह चौड़ी छाती पर चल रहा था, पागल आँखों
से उसने पेड़ों के हरे और नीले दाँत गिने, फिर घनी झाड़ियों
में डुबकी लगा गया, वहाँ भेड़ियों की सन्तुष्ट गुर्राहट थी। एक
ताज़ा गोलीकण्ड पर बहस करते हुए उनके होंठ लाल थे···

अचानक धूप के झागदार पंख सूखने लगे
मधुमक्खियों के आबाद छत्तों
से गिरता हुआ खून पथरा गया, क़ब्रों से निकलकर कीड़े
हवा में उड़ने लगे दूर-दूर तक
तब मैंने देखा वसन्त का रूखा और सफ़ेद चेहरा
उसे पूरी ताक़त से चीखते हुए। फूलों की सुर्ख आग में
वह किसी सुगन्धित वस्त्र की भाँति जल रहा था अपने
अवसाद गर्जन और गुस्से में अकेला शिथिल ऐंठता उठता
और मुँह के बल जमीन पर गिरता—

नींद के उबले पानी में न्हाता पसीने से
तर मैं जूझता रहा लज्जा भरे तीखे अनुभव से। असमर्थ
भौंहें और गाल पोंछता। घास के कोने चबाता जंगली

जानवर की तरह वह ऊँची आवाज़ में रो रहा था। उसके
पास ही टूटी टाँगवाला मुर्गा कलगी संग नाचता। एक
कौवा सरसों के पत्तों पर पड़ी ओस से चोंच धोता हुआ !

तब मैं हँसा। वह ऋतु की पहली हँसी थी समझ में न
आनेवाली इच्छा-सी। मैंने खेल की चोट और धूल से सने
बच्चे को इशारे से बुलाया। कहा हँसो वह जीभ निकाल
कर मुस्कराया। मैंने वसन्त को अपने साथ सुलाया…
थपथपाया, चुप हो जाओ वह निःशब्द छटपटाने लगा
बुखार की आँच में तपता हुआ, बेहोश !

मुठभेड़

अगर चाहूँ तो मैं भी अपनी परछाईं और दुनिया
के बीच एक लावारिस दरख़्त
की भाँति खड़ा रह सकता हूँ
झेल सकता हूँ आँधी और बारिश के तमाम शब्द
रेशे-रेशे मे गूँजती हुई रतौंधी के
बावजूद एक-एक फूल में अनगिनत आँखें
जगा सकता हूँ

तय सिर्फ़ यह करना है कि आवाज़ों को आँगन में
रख दिया जाये या तोपख़ाने में
माचिस मोतीलाल की मुट्ठी में रहेगी या रामदेवजी
के मेले में

खम्मां-खम्मां ! क्षमा करो ओ प्रभु, पाप की पताका
उड़ाने वालों को क्षमा करो
—यह प्रार्थना रोज एक एक दवाफ़रोश की दूकान से
निकलकर जनरल वार्ड में छटपटाती हुई
उस छरहरी स्त्री के तालू से चिपक जाती है

जो अर्धरात्रि के बाद मरनेवालों के नाम-पते
बाहर के गमलों में रोप देती है चुपचाप

फिर अन्धकार में किसी की पदचापों के उगने
का इन्तज़ार करती है

अगर चाहूँ तो मैं भी इस 'इन्तजार' को बीमार
और बदहाल हथेलियों की थरथरी पर
कील की भाँति गाड़ सकता हूँ
उठा सकता हूँ मृत्यु के नीरव कुहासे को नींद
की झुकी हुई कुहनियों पर
गाड़ी में जुते हुए बैलों की भलमनसाहत पर घण्टों
बोल सकता हूँ

लेकिन सवाल सिर्फ़ यह है कि बाड़े में बन्द बहादुर
मवेशियों को 'श्रीमान्' कहने से
क्या गुलामी का नक्शा बदल जायेगा
या दुःखो के मुँह पर शंख रख देने से शाम
की धुआँ-धुआँ ध्वनियों को लौटाया जा सकेगा

अन्ततः तुम्हें ही हवा के चेहरे को पहचानना है, यार!
समय गली से गुजरता हुआ रात का सिपाही नहीं है
कि सामना होने पर तुम गिने-चुने लफ़्ज़ों में
अँधेरे की कठिन ड्यूटी को कोस दो और जल्दी से
'गुड नाइट' करो और पीछा छुड़ा लो।
नाखूनों में मैल जमा करने से कोई फ़ायदा नहीं
लिखो साहस की सख्त नोंक
से अपना निर्णय लिखो—अनन्त दीमक लगे घरों
और सफ़ेद मुस्कानों को
ओवरकोट में छुपा लेने का अर्थ
'स्वर्णयुग का स्वागत' नहीं है!!

तश्तरी के नीचे

तश्तरी के नीचे छुपे रहते हैं सवाल सुनहरे
छत्र, सर्प यहाँ-वहाँ
केंचुल छोड़ जाते हैं कितनी ठण्डी है जमीन
बार-बार पहने हुए वस्त्रों-सी स्त्रियाँ
खूँटी पर तीर-कमान, कसरत करते-करते पुट्टे
सूज गये है रजपूत के

पड़ोसी प्रसन्न हैं इस मजाक से
कि देखो-देखो यह आदमी नष्ट हो रहा है !

लड़की जिसकी आँखों में स्वस्तिक रचे थे
समुद्र की चट्टान हो गयी
लहरों में नहाती जहाजों से टकराती
भूल गयी कि वह क्या थी

एक सीधा संगीत एक तिरछा असन्तोष और
इन्द्रियों में फैले हुए अग्निकाण्ड
कौन-सी गति
कौन-सी मुस्कान कौन-सी खुशबू कौन-सी आह
काफ़ी दिलचस्प होते है कायरों और अपाहिजों के रंग-ढंग
एड़ियाँ आकाश में उछाल दो

कप में भर दो उबला हुआ पानी, फिर ब्राण्डी
खड़े रहो उसे
पीठ देकर खड़े रहो वह जो
तुम्हारे सामने नाई का उस्तरा है।

अँगूठे की छाप

अँगूठे की छाप की तरह उचाट
ठहरा हुआ और उभरा हुआ एक दिन
वार-वार

मुझमें से निकल आता है
कहीं भी।

वही पृष्ठदंश वही समय और वही आकार
सड़े-गले भोजपत्र-सा

बन्द है घरों की आँखें

सिर्फ़ एक मुर्दा खड़ा है पब्लिक पार्क में
शायद वही सबसे ज्यादा सही है।
जिन्दगी की
जाँघों में दुबककर बैठी गुर्राती हुई
बिल्ली की आवाज गूंज रही है
सड़कों पर और मुर्दा हँसता है
पत्ते बजते है

सुनो अगर तुम देखते रहोगे आईने में ही
तो देखोगे केवल अपना चेहरा
और यदि
नज़र डालोगे खिड़की में दूर तक
तो वे सब लोग दिखलायी देंगे
जिन्होंने तुम्हें एक साबुत चेहरा दिया है
और जो रफ्तः रफ्तः
अपने चेहरों को भूलते जा रहे है

इससे पहले कि हवा को मुल्कों में
पानी को सूबों में बाँट दिया जाये और ज़मीन को
तहाकर रखा जाये काले सन्दूकों में
अँगूठे की छाप को
नेजे की नोंक से खुरच दो
घरों को आँखें खोलने दो
और मुझे उस गरम तन्दूर पर कविता लिखने दो
जिसके चौतरफ रोटी के सिकने की महक
तैर रही है !!

एक पुरानी औरत

पहले वह ऐसी नहीं थी
उसके चेहरे पर प्यार का उजास था, लेकिन
अब सिर्फ धुआँ
देह में एक संगीत साँसें लेता था
और अब एक उदास प्रेत।

वह जो सँकरी घाटी में चुपचाप चल रही है और बार-बार
अपने पाँवों को इस तरह देखती है
मानो वे उसके दुश्मन हों।

हाथों से ढूँढती है वह खोये हुए खत रिबन दिन फूल
और हाथ नंगी टहनियों में तब्दील होकर
झूलने लगते है।

पहले वह होंठों से देखती थी
आँखों से सुनती थी
कानों के गिर्द लहराते हुए सम्मोहन में समेटती थी
दुनिया के दरियाई द्वीप
अब वह अपने अंगों का विश्वास खो चुकी है।

अब वह दो ढीले ढक्कनों से ढँक चुकी है
अपने वक्ष का आलोक
और उसमें वैसा ही दमघोंट अँधेरा है
जैसा किसी बन्द सुरंग में होता है।

रास्ते के किसी मोड़ पर अटकी हुई हँसी को
छूने के लिए
वह बदहवास-सी आगे बढ़ती है
पर सहसा हँसी एक घायल मोरनी
की तरह धूल में गिरकर छटपटाने लगती है।

एक मुहताज सम्बन्ध
एक गुमशुदा सम्बोधन हमें घर और घाटी के बीच
थाम लेता है
वह टीले पर खड़ी है काँपती हुई
फिर डूबते हुए सूरज के साथ मुझमें डूब जाती है।

दुःख

एक चट्टान के बारे में सोच रहा हूँ मैं
सुफेद-झक्‍ख
और खूब बड़ी खूब ऊँची

दोपहर में नीलम की तरह चमकती हुई

नीचे
जहाँ से वह ऊपर उठी है
देखो तो, एक बच्चा
माँ की हथेली के तले सोया हुआ
हूबहू बसुनी फूल-सा
जो शिखर दिन-घड़ी में
आँखें मूँद लेता है अपनी

मेरे साथ अक्सर होता है ऐसा
कि मैं आम-तमाम चीजों में
हो आता हूँ चुपचाप

फिर एक नक्शे में रख लेता हूँ सब-कुछ
हो सकता है
वह कोई मैदान हो दृश्य हो या दुःख हो
एकदम अनकहा

फिर एक पक्षी अचानक उड़ जाता है
मुझमें से
खड़ा-खड़ा दरख्त की भाँति मैं—
देखता रहता हूँ उसको और अपने भीतर की
किसी शाखा पर टँगे सूने घोंसले को
जहाँ कोई था कुछ देर पहले और
जहाँ कोई लौटेगा कुछ देर बाद
दूना उदास और अकेला होकर…

ताई प्रभुताई

१
मेंड़ पर चढ़ते ही नज़र आता है पेड़
और पेड़ तक पहुँचते-पहुँचते
डाल से गिर पड़ती है
कल शाम को बनाये गये घोंसले के
मरने की मुनादी

गिलहरी चुपचाप कुतरती रहती है
गूदा और गर्व

हँसने लगता है समूचा हरापन
किसी घुग्घू
किसी घुंघरू को खुश करने के लिए
और मेरे हाथों की
मुड़ी हुई अँगुलियों में एक छोटी-सी चिनगी
चटककर रह जाती है सिर्फ़ !

२
काचर-बोर-बाजरे के सिट्टे-पुल-रास्ते
अँगरखे-साफे-ओढ़ने-कुरते-कारखाने-समन्दर-पहाड़

सब के सब सिर झुकाये ताल दे रहे हैं
ताई प्रभुताई की बतकार पर और

मैं देखता हूँ कि एक शीशी में
धीरे-धीरे रेंगकर
आगे बढ़ रहा है संखिया—
एक सुन्दर, आकर्षक कीड़े की तरह !

वह क्या धुंधुआ रहा है
जंगले में···जीवन जैसा !

३
उधर—कौन हिला रहा है
अपने इजारबन्द की फुन्दनी और सोने की बत्तीसी
से टपकती हुई सयानी हँसी ?

कौन फैला रहा है इत्ती सारी काली-पीली-नीली
आसमानी पगडंडियाँ—
टूटी चौखट वाले दरवज्जों के सामने ?

अभी-अभी तो दातौन रगड़ रहा था हजारीलाल
लुंगी कस रहा था अजीमुद्दीन
कचरा उठा रहा था गोपला
टाट के परदे को रोशनी के लिए खिसका रही थी फुलिया

और अभी-अभी बेसुरी हो गयी है पूरी नदी
काठ मार गया है बोलते हुए पानी को !

४

हर कोई हर चीज़ को तलाश रहा है
हर चीज अचानक गायब हो गयी है
चूल्हे और हाट के बीच

किसी को पता नहीं कितनी कंघियों की ज़रूरत है
ताई प्रभुताई के केश सुलझाने के लिए
कितने देहधारी शब्दों को बुलाया गया है
दीवारों में चिने जाने के लिए

ठंडा पसीना ठंडी ऋतु के स्वागत में खड़ा है, बेआवाज़ !

तो भाई, वहीं जहाँ दूसरे लोग पुनर्जन्म की
प्रतीक्षा में खड़े हैं और गा रहे हैं
प्रभुगान—मुँह में तिनका डाले हुए···
एक उखड़े हुए दरख्त को देखो, जो अब एक
तना भर है यानी ठूँठ है—लेकिन

उसकी जड़ें अपनी ज़मीन के रस में डूबी हुई हैं
पुख्ता हैं—
कोई असर नहीं है उन पर आँधी के प्रसंगों का !

लाओ लाओ

लाओ लाओ मुझे यह बस्ता दे दो
मैं इसे पोखर में
फेंक दूंगा

लाओ लाओ मुझे अपना गट्ठर दे दो
मैं इसे अदृश्य में
छुपा दूंगा

लाओ लाओ मुझे अपना पति दे दो
मैं उसे क़िले में हिफ़ाजत से
रख दूंगा

लाओ लाओ मुझे अपना साहस अपना गुस्सा
अपना रंग अपना चन्दन अपना हथौड़ा दे दो
मैं सबको एक गड्ढे में
दबा दूंगा

वह समझा रहा था
लोगों को भरोसा दिला रहा था
कि हर किसी का बोझ हल्का कर देगा

मैं भी उसकी अँगुली पकड़ कर
चलने लगा
भारहीन सारहीन धारहीन--
कभी उसे पिता कभी चाचा कभी ताऊ
कभी साहबे-आलम कहने लगा
आराम से रहने लगा !

बूढ़ा

यह एक
पुरानी औ [illegible] का किस्सा है
जब उसने [illegible]
कुछ साफ़ देखा और तय नहीं कर पाया
कि क्या देखा

एक रोज़ आहिस्ता-आहिस्ता
सड़क पार करने के बाद
उसने बाज़ार की दूकानों पर नज़र डाली
और तमाम चीज़ों को
बेतरह हँसकर रोते हुए पाया

स्कूल के फाटक
अनाथाश्रम और पार्क के पास
उसने जड़ें काटनेवालों
के मुँह से
डालियों और फूलों की तारीफ़ सुनी—
फिर मुश्किल से पहुँच सका
घेरे के बाहर

अलबत्ता नदी के विलाप पर
वह बहुत देर तक सिर धुनता रहा
लेकिन
आकाश को मोम की भाँति पिघलते हुए
देखकर उसे रोमांच हो आया

दौड़ते-दौड़ते और
कई दृश्यों को अनदेखा छोड़ते हुए
उसने अपने घर का दरवज्जा खोला
सामान को उल्टा-पुल्टा
फिर एकदम ताज्जुब से भर उठा—
पत्नी सोने के बिस्कुट चबा रही थी
और डेढ़ साल की गुड्डी
ठंडे चूल्हे में हाथ डालकर खुश-खुश
निगल रही थी
राख और कोयले !

बूढ़े की आँखें बाहर निकलकर
जमीन पर गिर पड़ीं और
गुबरैलों की तरह इधर-उधर लुढ़कने लगीं
बदहवास !

चीख़

कपड़ों में लिपटी हुई
सलीकेदार चीख़ को अन्दर ले जाया गया

द्वार पर धुआँ था

दो जने बातें करते हुए
खरोंच रहे थे
दीवार और स्याह-सफ़ेद नाखूनों पर
लाल-पीले होने की रिहर्सल
कर रहे थे

मैंने सहम कर पूछा
भीतर क्या हो रहा है क्या हाल है
चीख़ का

वे मौज में मुस्कराये और कई हफ़्तों तक
एक ही आसन पर मुस्कराते रहे
अविचल
फिर सूराखों में सिर धँसाकर झाँकने लगे

सहसा पहले ने आँख मारी और

पीछे मुड़कर बोला—औरत है
इन्तजार कर रही है

तब दूसरे ने पहले के कन्धे को सहलाते हुए
कहा—और कर ही क्या सकती है बेचारी
जब पेट में बच्चा हो

वे पेशेवर गवाह थे और अपनी माँ की
गोद से गिर पड़ने के बाद
झूठ और सच में फ़र्क करना भूल गये थे !

तुमुल नाद

मैदान में आओ और देखो
कि मैदान कितना बड़ा है
कितना बड़ा है आदमी का विषाद

अगर तुम दूसरी चीज़ों में स्वाद से
हटकर देख सको

एक थैला है सिर्फ़ उसकी कलाई में
झूलता हुआ

अगर तुम झूले से उतरकर उसके पास
जाओ तो शायद चीन्ह सको

कि वह किस किस्म की गोलाई में
फँसा हुआ है और घूम रहा है

घूम रहे हैं वे भी हरी दूब पर
जो मधुमेह के मरीज़ हैं

मैदान में आओ और देखो
कि वे कितनी बेरहमी से रेत और

हरियाली के रिश्ते को
नष्ट कर रहे हैं कच्ची कोंपलें चबाते हुए
पायरिया थूकते हुए

यह सही है कि घर है बच्चे हैं गमले हैं
कविता है ठुमरी है

लेकिन वक्त आता है जब मैदान में आना
और मैदान होना
जरूरी होता है जुबान वाले के लिए

आओ और ला सको तो साथ लाओ।
कविता और ठुमरी और मोरचंग और नगाड़े को भी
तुमुल नाद
तुमुल घोष
तुमुल रोष

आँखों देखा उत्सव

शायद आपने सुना हो न सुना हो या अनसुना
कर दिया हो
यह उस रोज का वाक़या है
जब जयपुर में बड़े वज़ीर की सवारी निकली
आप कह सकते हैं—'शुभागमन' फिर 'शोभा-यात्रा'

हुआ यह कि शहर की शर्मनाक़ गलियों में गालियाँ बकते
स्कूलों में सजा पाते
मैदानों की मिट्टी खराब करते
और दूध-दही की नदियों में बेसबब बहते हुए तमाम बच्चे
एक खास नुक़्ते पर इकट्ठे होकर
गुलदस्तों में बदल गये

एक बच्चा मेरा भी था उस समूह में
जिसे गड्ढे से निकाल कर हवाई अड्डे पर खड़ा
कर दिया गया

रमजान जैसी भूखी रोनी सूरत के बावजूद
वह साफ वर्दी पहने था
कभी-कदास टेढ़ी झेंप-भरी आँखों से देखने लगता था
अपने मोजे

जो घुटनों तक आते-आते जयगान की तरह
गन्दे हो गये थे
आगे-पीछे निकल आये थे कुछ सूराख और टूटे धागे
उनके भीतर चमड़ी का वही उदास रंग
काँप रहा था जो मेरे चेहरे पर स्थायी है लेकिन
भूले-चुके उस औरत की हथेलियों में भी रेंगने लगता है
जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने मुझे
जिन्दा रहने और पिता बनने का मौक़ा दिया है

मेरे बच्चे ! *यह वक़्त स्वागत और*
मुस्कराहट का है
तुम्हारी थकान तुम्हारी कमजोरी का नहीं उदासी भी क्यों
तुम कहाँ छुपाओगे अपनी त्वचा की राख
जहाँ सूराख होंगे वह दिखलायी देगी
जहाँ चँवर और अभिनन्दन के गुब्बारे होंगे
वह टूटे धागों में उनके साथ-साथ उड़ती रहेगी

आपने देखा हो न देखा हो या अनदेखा कर दिया हो
पर मेरे सामने आसमान की तरह साफ़ है वह दिन वह दृश्य

धीरे-धीरे समूचा पांडाल पतन के पुष्पहारों से
भर गया शुरू हुआ कारनामा

हर सिपाही एक शानदार कलँगी सँभाले था माथे पर
हाथों में वही हथियार
जो किसी भी समय लोगों को
स्वतन्त्र रूप से दौड़ने के प्रतियोगी अनुभव दे सकते थे

कुछ मीठे शब्द फेंके गये मंच से
और सुबह से मिनमिनाते बच्चे उन्हें बिस्कुट समझ
झपट पड़े
बचे-खुचे टुकड़ों पर टूट पड़ा जन-समुदाय
सर्वत्र खुशी की छलछलाहट भरी तिलमिलाहट कि—

एक लाल लपट

मैं मैदान में खड़ा था
सचमुच माई-बाप ! मैं बहुत दूर था असली जगह से
जब मैंने आग आग और धुआँ धुआँ देखकर
अपने बच्चे को पुकारा

लेकिन बच्चा कहाँ था बच्चा अचानक कहीं गुम हो गया था
नहीं बच्चा वहीं था अपनी सही जगह पर
लाल लपट को मुट्ठी में थामे हुए

सारा किस्सा तब्दील होने लगा था हादसे में
लपलपाती हुई लपटें सिपाहियों के मुख चूम रही थीं
एक सुनहरी शाम कविताओं से बाहर निकलकर
शामिल हो गयी ध्वजभंग में
भीतर भरे भयावह कचरे के साथ
मेरे होंठ किसी अव्यक्त अग्नि से जलने लगे थे

आप जानते हैं ऐसे उत्सव में अपनी घृणा को छुपाना
कितना कठिन कितना ग़लत है !

मार्च '७७

हरे पत्तों को राख से
ढँक दिया गया है और कागजों की
सुफेद पुतलियों को सियाही से

एक कोने से दूसरे कोने तक
बुना जा रहा था
ववाल
कि हिरन छलाँग लगाकर
चौंका दिया
बड़ी-बड़ी टिप्पणियों के नीचे टँके हुए
सुन्दर सलोने हस्ताक्षरों को

यह चालाक यह पुष्ट रुष्ट हिरन
कहाँ से आया
इतने बन्द शहर की इतनी बन्द इमारत में

सहसा हिनहिनाने लगती है हवा

उड़ने लगती है राख कि चौतरफ राख
कि पूरा ढेर ग़ायब

कि कोमल हरे पत्ते खुशी-खुशी बाहर
निकलकर
चढ़ जाते हैं पेड़ों की टहनियों पर
उन बच्चों के साथ
जो कच्ची ग्रमिया खाने के लिए
बेचैन हैं जाने कब से !

मलवे के बाहर

होता रहे। अब कुछ भी होता रहे। कुछ भी होने से
अगर कुछ होता हो। ईंटें उखड़ रही हैं।
दरवाजा टूट रहा है।
जो टूट रहा है उसका टूटना निरन्तर जारी है।

मलवे के बाहर क्या है? बाहर हमेशा
बाहर होता है।
तुम उठकर देख सकते हो।
शायद तुम कहोगे—हाय, कित्ता मनोहर मातम है!

रास्ते उतने ही अनिश्चित हैं
गलियारे उतने ही संकीर्ण। उनके बीच
जहाँ आदमी के कूवड़ पर
इमारत की नींव है—
लंच में देश के नाम सन्देश
और डिनर में स्त्री के रमणीय अंगों का
आयोजन हो रहा है। शीशे के सामने छिड़्-छिड़्
पाउडर छिड़कता है छगनलाल। वेखबर अपने आप से।
कि उसकी अक्ल स्वराज्य के
कोढ़ में गल चुकी है।

मैं बोलूं न बोलूं क्या फ़र्क पड़ेगा । लेकिन टेलीफोन में
खतरे की खूंखार घंटी बज रही है
और चोगे को उठानेवाला हाथ
सोफे की बांह पर पड़ा है । कटा हुआ । भीगा हुआ
खून से ।

धीरे बोलो । धीरे । और धीरे । अब यह भाषा नहीं
चलेगी । थाने से अदालत तक चलेगी साथ
सिर्फ़ तुम्हारी पदचाप । उनकी निःशब्द आवाज़…
आंखें आंखों में डूब जायेंगी । देखना चाहोगे कुछ और
दिखेगा कुछ

एक अवसर की प्रतीक्षा में खुले हुए
सीपियों के मुख । उनमें ज़हर भर दिया गया है । क्या तुम्हें
साहस की कलफ़ में चमकता हुआ
अपना सलवटों-भरा भय नज़र आता है ? क्या तुम
गुमशुदा लड़के-लड़कियों के मरणोत्सव पर
दुनिया के तमाम फूलों की सूची बना रहे हो ? मसहरी में
घुसकर क्या तुमने स्वयं को सुरक्षित
महसूस करने का रोग पाल लिया है ? शेव करते समय
क्या तुम चेहरे की चमड़ी को बेदाग़
बचा लेते हो ?

एक कोई रोज-रोज नष्ट होता है और जानता है ।
दूसरे को इतना भी अहसास नहीं ।
रतौंधी वाला नंगा होकर
घूमता है रात में और सोचता है कि कोई
उसे देखता नहीं ।

होता रहे। अब कुछ भी होता रहे। कुछ भी होने से
अगर कुछ होता हो। लेकिन—
मलवे के बाहर जहाँ-जहाँ 'अगर' है
वहाँ-वहाँ एक गुंजाइश है।
तुम न देखो। तुम उठकर देखोगे तो यही कहोगे—
ओह, कितना नेक कितना समझदार सन्नाटा है!

पालकी वाला

ज़मीन में पाँव रोपकर
रुके हुए पेड़ों और कँटीली झाड़ियों के बीच
वह दुकुर-दुकुर दौड़ रहा है। पालकी का
बंसा उठाये। अपनी हुँफनी से भी तेज़—

उसकी दुल्की चाल के पीछे
कुछ और जनों की दुल्की चाल है। वे सब। वैसे ही।
जैसा वह।
कन्धों पर बराबर पालकी का बोझ। कितने कितने
कितने बरसों से—
वह नहीं जानता है। लेकिन

जब-जब सामने का जंगल-झाड़
अड़ जाता है। कि अभेद्य
हो जाता है अन्धी दीवार की तरह; वह
कोई सूराख
कोई सुरंग बनाकर
पार निकल जाता है। निर्विकार

छोटे-छोटे डग भरता तय करता अनन्त राह

भौहों से गिरते हुए पसीने ने उसकी
आँखों के आगे
धुन्ध का एक अदीठ परदा लटका
दिया है कि वहाँ । कभी-कभी । उगते हैं
लाल-पीले तारे ।
झिलमिलाते हैं टूटते है डूब जाते हैं
जाने किस समुन्द-सरोवर में…

कऊन लोग है पालकी में—कित्ते हैं—
कहाँ जायेंगे—उसे नहीं मालूम । सिर्फ़ इत्ती
जानकारी है फुंकनी में
घरघराती हुई साँस को । कि वज़न घटता नहीं
बढ़ता ही जाता है और अक्सर
चलना पड़ता है पालकी लेकर । हवा के
खिलाफ़ ।

ओह यह हवा । आखिर । इतनी नाराज़
क्यों है मुझ पर ।
बहुत ही गुस्सा करती है
कि थपेड़कर
पलट देती है मुंह । सनसनाती हुई
कहती है । देखो पीछे । मुड़कर देखो
तुमने अपनी कितनी ताक़त
नष्ट कर दी है । जहाँ-जहाँ से गुज़रते हो तुम—

हरे पत्ते । और पंखेरू । और बच्चे
आदमी और उनके गाँव । नाम
स्त्रियाँ और उनके काम । धाम

सहमकर चुप हो जाते हैं। उड़ने लगती है
चेहरों और चूल्हों के गिर्द
भुतैली राख···

वह अनमना है। वह पालकी वाला। जो
आगे-आगे भाग रहा है बदहवास।
बेचैन है। हवा की बातें सुनकर। पहली बार।
घरता है अपनी परछाई को
हथेली से पोंछता है होंठों के झाग और
बुदबुदाता है—यह ठीक नहीं।

—क्या ठीक नहीं क्या ठीक नहीं क्या ठीक नहीं
सहसा उन सबके माथे पर
सवालिया निशान खिंच जाते है
जो उसके साथ है। और पालकी ढो रहे है

—यह पालकी।
वह जवाब देता है। स्वयं को। उनको।
—यह पालकी ग़लत है और उतने ही गलत है
हम लोगों के कन्धे
वे उस जगह पर नहीं हैं जहाँ उन्हें
होना चाहिए!

उसका उत्तर गूँज उठता है घाटी में। नदी के
संग बहने लगता है। कि खड़ा हो जाता है
पहाड़ की चोटी पर
तभी। तैरता-सा आता है। एक हीरामन सुग्गा।

चहकता है उसकी वाँह पर
—बोलो, प्यारे मुल्कीराम ! कैसे हो ?

चौंकते हुए। उमड़ पड़ता है हिरदय। कि
पालकी वाला उस मुस्कराहट में
थम जाता है—रच गयी है जो सूखी
पपड़ियों के जाल में। नयी मिठास लिये हुए।

उसे याद आता है कि वह
दुल्कीराम नहीं, मुल्कीराम है। कि वह जो है।
वह नहीं। कुछ और है।

फिर क्यों—फिर क्यों ढोऊँ मैं यह बोझ
यह गुम्बज।···
पालकी फेंककर वह चला जाता है
दरख़्त की छाँह में। साथ-साथ सारे संगाती।

आग की भाँति फैलती है खबर कि पालकी
फेंक दी गयी। टूट गया उसका चौखटा।
अचरज है चौतरफ। उजाला है।

लोग जुटते हैं और जुड़ते चले जाते हैं
कि घेर लेते हैं पालकी

आओ भाई आओ। देखें जरा हम भी। कि क्या-कुछ
ठुँसा हुआ है इस दोखण्डी दोमुँही
पालकी में !

वा-वाह वा-वाह झालर तो ख़ूब है। घनेरी।
झीनी-झीनी। रेशम की। फुंदनों पर झूल रहे हैं।
फफूंद के फूल—

किन्तु भीतर बावड़ी की साँय-साँय। कि हांडी का सिर।
काठ की खप्पचियों का शरीर। अंग-अंग पोला। भयानक।
भूसे का। पुतले। केवल पुतले। ख़ूंखार-से। कि घिनौने।

पालकी वाला हँसा। हँसता रहा। यह देखकर।
उसके साथी-मित्तर हँसे। हँसते रहे। मानो पगला
गये हों। हँसी, हे पाठक, हँसी ही हँसी!

दस्तक दोगे तो दरवाज़ा खुलेगा। पालकी टूटेगी
तो हँसी फूटेगी। और। जो हँसेंगे हरियाली का
सुमरन करेंगे। उनके दिन ज़रूर फिरेंगे!

गिलहरी के लिए

गाछ पर चढ़ती उतरती है। कि जाने
क्या-क्या कुतरती है।
गिलहरी।

धूप और छाया के। अलग-अलग परदे।
उन्हें हिलाती है। खींचती है अपनी
रफ़्तार के साथ। बातें करती हैं
एक तिनके से। घण्टों।
कि जहाँ-जहाँ सुस्ताती है। कुछ ताज़गी
कुछ हलचलें। छोड़ जाती है।

लेकिन गिलहरी को नहीं पता। कि उसे कोई
देख रहा है। आँखें आधी बन्द आधी खुली।
कि पसरा हुआ घास पर। सुस्त
और टूटा हुआ। वह। उस चुस्त
गिलहरी से जुड़ना चाहता है।

कैसे। हाँ कैसे मालूम हो गिलहरी को।
कि वह किसी के लिए

क्या हो गयी है। कि उसने अपने आसपास
एक गुनगुना जलगान रच दिया है। कि दूसरे
उसे गा सकें। नहा सकें
निर्मल झरने में।

उत्पात

चूहे खूब उत्पात मचा रहे हैं। खा गये हैं
खेत-खलिहान कि खोखला
कर रहे है। नगर को

वर्दाश्त करो वर्दाश्त करो

आये-आये राजा के सिपाही। कि बोले—
हम हैं चूहामार। और
पीटने लगे घर-घर में काला डंका

वर्दाश्त करो वर्दाश्त करो

रेशम की शतरंज। कि मौजूद
हाथी-घोड़े-प्यादे। सब चूहों के संग खेलने में
मशगूल है। कि कुतर रहे हैं काजू हमरे
बांके सिपहैया। मस्त-मस्त ता-ता थैया

वर्दाश्त करो वर्दाश्त करो

गांव खाली। शहर खाली और। आठों पहर खाली
भूख से। प्यास से। मरे हुए लोगों के
खुले हुए मुंह। मानो चूहों के बिल।

बिलबिला रहे हैं वैन। कि बर्दाश्त नहीं होगा अब।
लेकिन कानों में शीशे की फांक। एक सड़ी हुई
जुग-जूनी हाँक। वही। तेज़। कि

बर्दाश्त करो बर्दाश्त करो

सचमुच तब

बार में बैठा रहूँ। कि पीता रहूँ शराब
देखता रहूँ नीले कुमकुमे
कि जीता रहूँ एक मेज़ पर। बार-बार
यह सोचता हुआ कि कोई
सामने है। मैं उससे कुछ कह रहा हूँ।
बह रहा हूँ मेहदी हसन के
बहाव में।

दरवाज़ा खुलता है और। जब-जब
किसी की नयी पदचाप
सुनायी देती है। मुझमें से कुछ निकलकर
फ़र्श पर लोटने लगता है। कि अब
यह सहना कठिन है...

वैसे एक बिखरी हुई। उखड़ी हुई
दुनिया में
मेरा चुपचाप बरबाद होना। क्या मायने
रखता है। फिर भी—

भीतर ही भीतर एक इन्तज़ार जाग रहा है
कि कोई धीमे-से कन्धे पर। प्यार भरा

हाथ रखेगा। बहुत हो गया। उठो। यहाँ से
चलो। बाहर।

सचमुच तब। मैं उसके संग चल दूँगा। दंग
रह जायेगी शराब। मेज़। मृत्यु। ग्रौर मेरी साँस।

ढाल बनेंगे जो

बहुत खराब ग्रादतों में से । एक यह भी है
कि सूखे पीले खामोश
पत्तों के पास । अक्सर । अपना मौन रख देता हूँ
कि मैं भी हूँ तुम्हारे साथ
कि उस ऋतु । उस आँधी के विरुद्ध । जो हमें
नंगा और निरुपाय देखकर । सन्तोष से
भर उठती है

तोमार बाड़ी कोथाय । होता यह है कि मेरे
इस सवाल से वह चौंक उठती है ।
कि उठा देती है चिथड़ा हाथ । तत्काल । रानी
विक्टोरिया के आगे फैले हुए मैले मैदान की
तरफ़ । लेकिन । कौन समझेगा
कौन बूझेगा कि वह बायाँ हाथ । तमाम दैन्य ।
अनन्त तक़लीफ़ के बावजूद
एक रास्ता है । एक पहचान है । कि उस पर
कब्जा करो । कि अन्धकार के साथ
सारे मधुर सम्बन्धों को तोड़कर । निर्मम बनो

इससे पहले कि कोई मुझे
चौरंगी की चकाचौंध में औंधा गिराने की

कोशिश करे। मैं फिर जा बैठता हूँ
उन्हीं टूटे पत्तों के समीप। हाँ वे पत्ते
एकजुट होकर छाजन बनेंगे। छत्त बनेंगे। श्रौर
ठण्ड में। ताप में। बारिश में। मौसम से लड़ते हुए।
जो चाहेगा—उसके लिए श्राड़ बनेंगे। ढाल बनेंगे।

आमि आनन्दी

छककर पीने के बाद
अपने शरीर का सुगन्धित पेय
वह लुढ़क गयी
बिस्तर पर
कलई किए हुये भगोने-सी

कितने दिन और कितने दिन
यह समझौता
यह छल
अनसुनी करते हुए उदासी की आवाज़
उसने फिर से
कस लिया स्कार्फ कानों पर

सड़क पर कुचले हुए
कुत्ते की करुण चीख लँगड़ाती बिलबिलाती
आयी उसके दरवाजे पर
और भक्-भक् जलने लगी

गर्भ में रखी हुई भीख पर
हथेली दबाकर
उसने तकिये के नीचे कुछ टटोला

एक सपना बाहर निकाला
ग्रौर उसकी नोंक को
पलकों में चुभोकर सो गयी
खो गयी संक्षिप्त प्रार्थना में—
ग्रामि ग्रानन्दी, ग्रो माँ, ग्रामि ग्रानन्दी
खमा कोरुन खमा कोरुन खमा कोरुन...

काई

कच्चे फर्श पर दरी । कि घुटनों पर तख्ती डाले
मैं एक डरावने घेरे से
बाहर निकलने की कोशिश कर रहा हूँ । कि
लिख रहा हूँ उस आकाश के बारे में
जो डूब गया था कल शाम । देखते-देखते
भूरी और नीली । काई में

वजह कुछ नहीं । बस, जगह की जरूरत थी
मुझे और । मैं आ गया यहाँ । जैसे कोई
मुर्दा । बहते-बहते । नदी के
किनारे आ लगे

पहले शोर सुन लेता था । चीजों का । कि
उनके बदलते हुए सम्बन्धों का
और कभी-कभी । टोक देता था पाँवों को
उधर मत जाओ । इधर मत रुको । फिर
एक दिन समूचा समय । कि उसका आवागमन
टूटी हुई कंघी में फँसे
चार-छह सफ़ेद बालों के साथ उलझकर
रह गया । कि मैं बूढ़ा हो गया । कि अचानक

उसी वक़्त मुझमें उछाह जागा। कि मैं असली दाँत
उखाड़कर नकली पहनूं। कि हँसूं। जोर से
कि वह नकली हँसी मेरे असली दुःखों की देहरी पर
बजती रहे। दिन-रात।

अवसान

मचान के
बाँस पर टँगी हुई लालटेन और
एक खामोशी की
लम्बी छाया

समूचे जंगल का रोमांच
काँप रहा है
उसके वक्ष में

इच्छाओं के अनन्त बोझ से
दबा हुआ
वह बादल
वह पक्षी
वह शब्द
वह भूख का लिबास

मृत्यु की अपरिचित हँसी में
खनखनाकर
रह जाता है
प्यार का उनींदा क्षण और

हत्यारा खून से रँगे हाथ
धोने के लिए
चल पड़ता है झरने की ओर

ऊँचाई पर मुलुक

इतनी उमस इतनी गरमी कि मुट्ठी में
अफीम और बन्द पीपे
में गुड़ की भेली पिघल रही है

पसीने में
पोखर की तरह गँधाता
खुजलाता ताड़पंखे की डण्डी से अपनी
अवाक् पीठ
वह रास्ते के किनारे पड़ा है
रास्ते की सरकारी धूल को
घूरता हुआ

बरसों पहले इसी धूल ने
उसकी शक्ल को निगल लिया था और
जड़ दिया था गर्दन पर
एक जूठी मुड़ी-तुड़ी पत्तल का गोल टुकड़ा

पत्तल का मुख न धान को चीन्हता है
न आटे को
चबाता है सिरफ रोनी-रोनी सूरत वाली

रोटियों के कौर
सूखी हड्डियों के डंठल
कोई-न-कोई फेंक जाता है रोजीना
उसके सामने

आँखें देखती हैं
न जाने क्या देखती हैं
कान सुनते हैं
न जाने क्या सुनते है
होंठ जब-तब लटककर झुक जाते हैं
राष्ट्रीय झंडे की तरह
न जाने किसकी मृत्यु किसके शोक में

रास्ता यह रास्ता अब उसका नहीं
शाह क़माल का है
शेख जमाल का है
देशभूषण सिंह और सन्त निहाल का है
वे गुजर रहे हैं उस पर से
धूल में फूलों की पंखड़ियाँ
आवाज़ में तोप की धाँय-धाँय

हवा में बारूद की गन्ध महसूस कर वह
हटता है पीछे
नहीं जानता है कि पीछे बावड़ी है
अन्धी बावड़ी

नहीं नहीं हम उसे इस तरह
गिरने नहीं देंगे
मरने नहीं देंगे
हमें उसके अस्तित्व की जरूरत है
वे उसे खींचकर निकालते हैं
ऊपर उठाते हैं
वह ऊपर उठता जाता है आकड़े के फाहे-सा हल्का

क्या यह फाँसी की टिगटी है
इतनी ऊँची आसमान को छूती हुई
वह झूलते-झूलते सोचता है और
सोचते-सोचते फन्दे को सहलाता है
रास्ता खुश है कि वह बदहाल अब उसकी
बगल मे नही रहा
मुलुक तो ऊँचाई पर ही अच्छा लगता है !

जूड़ा बाँधते हुए

जूड़ा बाँधने में तन्मय है वह। खाली-खाली
आँखों से
अपनी खाली-खाली आँखों के भीतर
झाँकती हुई।
शीशे के उस पार।

वहाँ एक और स्त्री है। हमशक्ल।
फूल चुनते-चुनते जो हँसने लगती है। सहलाती है
एक-एक पाँखुरी को कोमलता से।
इतराती है जैसे बाबुल की
बगिया में छोटी-सी बच्ची···

बच्ची के चारों ओर उजास है। आसमान है।
जिसमें वह तारे उगाती है।
पतंगें उड़ाती है। खूब ढील देती है
डोर को—

वहाँ से उसे सब नजर आता है।
वह खेत है बड़े वीर का। वह पटेल का कुआँ।
वह आँगणा है
मांडणों से रचा और उधर अम्मा की रसोई।

मुंडेर पर पाँव झुलाकर
बैठी हुई बच्ची
गाती है। मुँह चलाते-चलाते।
हथेली में बाजरे की बाटी और हरे चनों की
चटनी। दो खट्टी इमलियाँ।

टन्न-टन-टन्ननन्ननन्न-टनन्नन
बाहर घण्टी बजाता है
ताँगे वाला
पुकारता है—बाई-ई-ई-हो-बाई-ई-ई

स्त्री डर जाती है।
जूड़े में लगाते-लगाते मसलकर फेंक देती है
आखिरी फूल। बाई-ई-ई-हो-बाई-ई-ई
सिर्फ यही हाँक रह जाती है शेष।

चेहरे पर पोतकर मरी हुई चाँदनी
वह खिड़की पर जाती है।
—बाई-ई-ई! गाहक है। गाहक है। आसामी।

ताँगे पर लदकर आया है वह मोटा अजगर। स्त्री
उसे अपनी अँगड़ाई में
लपेट लेती है। कि बीकानेर वाली का बहुत नाम है
बाजार में।

सूखी लकड़ी पर रंदा चलता है। चलने दो।
छिलता है गात। छिलने दो।
जलता है जुगनू का रंग। जलने दो।

चीख ! नहीं है चीख कलेजे में । केवल हूक है ।
फफोले-सी । फूटकर वह जाती है । रोम्रों-रोम्रों
भर देती है चिपचिपाहट से—

उस वखत भी । जब बाज ने झपट्टा मारा था ।
उठा लिया था पंजों में बच्ची को । छत की मुंडेर से ।
वह चीख नहीं पायी थी ।

बहुत देर बाद । उसकी सिसकियों को सुना था
आकाश ने और तटस्थ हो गया था ।

हक़

यही है वक़्त का रंग-ढंग
यही कि वह
जब कुछ देता है तुम्हें तो कहता है
जरा सुस्ता लो
वर्दी उतार दो
हथियार खूँटी पर टाँग दो
जल्दी मत करो
जो चाहते हो एक-न-एक दिन
मिल जायेगा अपने आप

'एक-न-एक दिन' से बड़ा
और कोई दुश्मन नहीं है तुम्हारा

इसलिए समय से बूँद भर भी
माँगो मत
छीनो
जहाँ तक तुम्हारा हक़ जाता है
अपने हाथ ले जाओ

यह छोड़ो, यह रहने दो
यह मत करो

—इस तरह की हिदायतें देना
और उन्हें क़ायम रखना
वह जानता है
उसकी एक न सुनो

अभी कुछ मत फेंको
सँभालकर रखो थैली में
पड़ा हुआ कल का खाना भी
वह बासी है लेकिन
उसे गरम करने और फिर
इस्तेमाल में लाने का
जतन तुम्हें सीखना है।

पानी का हाहाकार

कुहनियों से टूटकर
नीचे
गिर गये है हाथ
अँगुलियों से नख
पानीदार आँखें घाट के पत्थर
को एकटक ताकती हुई
मानो पत्थर मे ही दो छोटे-छोटे सूराख

वह लूलिया धोबी की बेटी
वह दूसरों के मैल और गन्दापे को
स्वच्छ जल की ओर
ले जाती हुई स्त्री
वह फीचे हुए वस्त्रो के संग
बाड़ पर सूखती
हवा में तलफलाकर उड़ती
भीर-भीर ओढ़नी

मैं उसके लूले बाप की मांची पर
बैठता था और
देखता था कि सुन्दर है
यह बेपांव की दुनिया

पहाड़ों ग्रौर समुन्दरों को एक पल में
नापती हुई

उस एक पल में सैकड़ों वार
सुहानी धूप-सी
झिलमिलाती थी वह सुनहरी स्त्री
वह इकहरी ग्रोढ़नी
गन्दगी की गठरियों में वगर-वगर
डूब जाने के बावजूद

छुटपन की छाँह से निकलकर
ग्रौर लौटकर
ग्रसंख्य पैरों वाले संसार से
मैं फिर गया एक रोज़
उस मांची के पास
यह जानने के लिए कि ग्रव पहाड़
कितने ऊँचे
कितने उजले
सागर कितने विराट् कितने गहरे
हो गये हैं—

मांची खाली थी

सो रही थी गर्द-भरी चुप्पी
उसके पायों पर
मूंज के चौखानों पर

मैं दौड़ा तालाब की ओर···
किन्तु उसका कीच-कगार तो
खुद ही आकर लिपट गया तत्काल
मेरे घुटनों से

टूटी हुई टहनियों-से वे हाथ
वह कंकाल चेहरा
दो गड्ढे दो पथरायी हुई पुतलियाँ

कहाँ है वह सुनहरी धूप
वह जगमगाती ओढ़नी वह आदिम गूंज
मेरे मन की

सुना मैंने सुना सिर्फ़ पानी का हाहाकार
जो एक अन्त था
और आरम्भ का पद भी !

विक्रेता

तुम्हारी ग्राँखें क़मज़ोर हैं। उसने
गुनगुनाकर कहा
ग्रौर चाकू के फल की तरह
तेज़ी से
ग्रपनी मुस्कराहट को
खोल दिया मेरे ग्रागे

तुम्हें चश्मे की ज़रूरत है। ग्रपनी नाक
पर चढ़े हुए
ग्रौर मुझे लाल-लाल घूरते हुए
चश्मे की तरफ़
इशारा करने के बाद
उसने मूँछों को
घड़ी के काँटों की भाँति
हिलाया चलाया थिर किया
—हाँ, इसी जगह रखता हूँ मैं समय को
ठीक नथुनों के नीचे !

एक बड़ी-सी हवेली। एक जबड़े-सा दरवाज़ा
एक साँप-सीढ़ी के खेल जैसा रास्ता ग्रौर
उसके छोर पर मकबरे की मानिन्द मुंह बाये हुए

वह कमरा। वह शानदार आसन
वह ठाठदार आदमी। और, वह किस्म-किस्म के चश्मों का
अद्‌भुत खजाना। मैं चकित था

मौक़ा देखो और नज़र का रंग बदल डालो
कभी आसमानी कभी हरा कभी पीला कभी कत्थई
—वह बोला और पान में जर्दे की
चुटकी डालने लगा डगर-डगर हँसते हुए

गाल में गुठली-सी उठाकर गों-गों करता रहा
कुछ पल। फिर अपना चश्मा उतारकर
रूमाल से पोंछने लगा

मैं दहशत से भर उठा, सहसा। निपट अन्धकार था
उसके चेहरे पर। वह अन्धा था!

बीज का रास्ता

आज फिर देखा चिनमू ने वह सुन्दर
सुर्ख गोला
उजास से भरा-भरा । तैरकर
आया हो जैसे समुन्दर में

चिनमू ठिठककर खड़ा हो गया
पाठशाला की
पगडण्डी पर । वह जानता है सूरज को ।
अभी ऊपर उछलेगा
और जा बैठेगा पेड़ की चोटी पर
परबत पर चढ़ेगा
आसमान की तरफ़ बढ़ेगा तेजी से
सीढ़ियाँ लाँघता हुआ

सूरज की ओर टकटकी बाँधे
आँखें पोंछने लगा चिनमू । पिता का चेहरा
झिलमिलाया कहीं नज़दीक और
बस्ते पर मुट्ठियों की पकड़ कस गयी उसी क्षण

अँधेरी रात में घर घेरकर घुसे थे
वे लोग और

रौंदते हुए कोना-कोना
ले गये थे पिता को अपने साथ
महीनों बाद वे लौटे और दरवाज़े पर छोड़ गये
एक अधजला शव

'मेरा रास्ता सूरज का रास्ता है'
बुदबुदाया चिनमू और उसके कण्ठ में पिता का
स्वर उमड़ने लगा बार-बार

वह चल पड़ा उस रास्ते पर।
पिता ने बोया था एक नन्हा-सा बीज। मिट्टी में।
माथे पर एक हरी कलंगी
एक मुलायम कोंपल रखे वह भी अब बढ़ रहा था
सूरज की ओर
चिनमू के संग-संग !

मौसेरे भाई

यह गढ़ है कि क़िला है कि महल है
कि झरोखा है कुतुब मीनार का

अटकलें लगा रहे हैं लोग। ठीक-ठीक
किसीको पता नहीं

वे जो वहाँ बैठे हैं। एक गद्दे पर
गाव-तकिये लगाये। कौन है
राजा है लुटेरे हैं पीर हैं सौदागर हैं ?

कोई कहता है कुछ। कोई बताता है कुछ
कोई सिर्फ आँख मारके
मुस्करा देता है

अब वे झुक आये है आगे
छज्जे पर
कुछ गा रहे है। बिलबिला रहे हैं। कि
दे रहे है दर्शन
सुदर्शन है
लिपे-पुते। रंगे-चुंगे। दबे-ढँके।

वे क्या गा रहे हैं
कौनसा राग
किसी की समझ में नहीं आ रहा है। लेकिन
पूरा-का-पूरा झुण्ड
सिर हिला रहा है। मानो
मिरगी का दौरा

आहो आहो वे कुछ बजा रहे हैं। वे क्या
बजा रहे हैं बाँसुरी शहनाई अलगोजा
बीन कि दूरबीन ?

तभी—
उनमें से एक ने ठहाका लगाया
टोपी को किश्ती की तरह हवा में
तैराया। नाक को फुलाया। दाँतों को किटकिटाकर
अपना राजछत्र दरसाया और

जोर से बोला, साहबान मेहरबान क़द्रदान !
हम गवैये नही हैं
न ही नचैये और बजैये हैं। सिर्फ़ भूखे हैं।
इसलिए

गाजर की पूँगी बजा रहे हैं
जब तक बजेगी। बजायेंगे।
नही तो इसे। तोड़कर।
खायेंगे !

इन दिनों

बकरा खुश है कि उसके आगे नरम-नरम
तर-ताजा पत्तियों का ढेर है
तसले में दूधिया पानी है
कुंडे में दाना है

खूँटे से बँधा हुआ वह एक गोलाई में
घूम सकता है। कि बना सकता है
उसीको लम्बाई और चौड़ाई

बकरा परम प्रसन्न है कि छोटा ही सही
उसका एक अपना निवास
साज और सामान
खान और पान और मान है। बें-बें बोलता है वह।
सिर हिलाता है। बातें करने के लिए बेचैन है
सबसे

मूँछें मरोड़ते और निचोड़ते
रुक जाता है जोधासिंघ
देखता है भौंहें सिकोड़कर। कि बकरा मुटिया रहा है।
जश्न का दिन नजदीक है।

बिरादरी वालों को बुलावा भेज दिया है। बकरा
एकदम्म फिट्ट है ठीक है।

बकरे का कोई परिचय कोई लाग-लगाव नहीं
जोधासिंघ से। वह मुग्ध है अपने स्वास्थ्य
अपने असल भाव पर। कि उसे जोर से
जमुहाई आ रही है

दूर तक अँधेरा है
दूर तक रोशनियों का राजपाट है
खाइयों का समारोह है
खन्दकों का कीर्तन है। कुछ सुनायी नहीं देता है।
फिर भी एक अधबिखरे छप्पर के नीचे
रह-रहकर मिमियाती है
बकरे की माँ। खैर मनाती है।
जोधासिंघ चीन्हता है उसकी पुकार। लेकिन अपने
छुरे और हाथों के प्रगाढ़ सम्बन्ध पर
उसे गर्व है। जैसे कोई बोलता हो बुखार में
वह तपते हुए स्वर में बड़बड़ाता है।

ओह, मैं जानता हूँ उन खूनी शब्दों का हाल।
मैंने महसूस किया है बारम्बार
छुरे का वार अपनी गर्दन पर। इसलिए उदासी के अध्याय
में आज भटक रहा हूँ।

पप्पा, तुम्हें क्या हो गया है! मेरी बिटिया
पूछती है।

क्या जवाब दूँ उसे ? मेरा पिता होना
अपने आप में निरुत्तर होना है।
वह जब बड़ी होगी और माँ बनेगी। तब
शायद याद करेगी इन दिनों को। मुझसे
ज्यादा समझेगी मेरा दुःख ! ...

सूली

वह उन हाथों को
पहचानता है
जो बेरों में गुठलियाँ
मिलाकर
बेचते हैं और तोहमत का
थूक
उछालते है सदा
हरी झाड़ियों की तरफ़

उसने सुना है उनका ऐलान
कि हाथी के पाँव में
सबके पाँव समा गये है अब और
अधिक पाँवों की जरूरत नहीं

उनकी आँखों पर चर्बी
छा गयी है
पलकें चिपकी हुई हैं चाशनी से
लेकिन वे भौंहों से देखते हैं
और देखकर
अचरज करते है कि मल्लाह की

लँगोटी भीगी हुई क्यों है
इतना पसीना क्यों चू रहा है
मजूर के माथे से

वह जानता है कि उसकी रोटी
सूली पर टँगी हुई है
वे खुश है वे मगन हैं उसकी रोटी को
मौत के मुंह में रखकर
उन्हें नही मालूम कितनी सकत है
उसके तन में ताप में रोष में
वह अपनी रोटी उतार लायेगा वहाँ से
लेकिन सूली खाली नही रहेगी
सुन लो अच्छी तरह सुन लो
सूली खाली नहीं रहेगी !

आघात

हाँ, फिर लहूलुहान हों
मेरे होंठ

मैंने उन्हें रख दिया
तुम्हारी मुस्कराहट की तेज-तेज़
धार पर

यह आघात
यह यन्त्रणा सहकर ही
वे जानेंगे
कि कैसा-क्या होता है
सौतेली माँ का
व्यवहार

और तब रातों-रात
समझदार हो जायेंगे !

उदासी

केसर-कस्तूरी से लबालब
प्याला

हाथों को होश आया
तो वह
आधा हो गया अचानक
और तुम भी
बचे रहे
आधे

एक नीला ज़ख्म
झरने लगा
तल के अतल में
नीले नाखून की पपड़ी तोड़कर

एक पूरी ज़मीन
उठकर
चली गयी
सामने की मेज़ से

प्याले के
साथ-साथ तुमने
अपने को
अपने में खाली कर दिया

कल सोमवार है
तो परसों जरूर मंगलवार होगा
यह सिलसिला कितना खतरनाक़ है
तुमने सोचा और उदासी
के खतरे में उस आवाज़ का
इन्तजार करने लगे
जो ऐसे वक़्त तुम्हारे भीतर
सायरन की तरह रोती है !

अन्ततः

तुम्हारी यह देह
यह सराय
अब सुनसान हो गयी है

जो लोग
रहते थे यहाँ
चले गये हैं छुट्टियाँ बिताकर
कि ऊबकर
तुम्हारे आतिथ्य से

हर कोने में कचरा और कीच जमा है
एक मैली गन्ध
जिसमें तुम्हारे अंगों की काई
सोयी हुई है स्तब्ध
वे
पीछे
छोड़ गये हैं छटपटाने के लिए

रोम-रोम से
झर रही है धूल

लेकिन चेहरे पर वह सबसे ज्यादा
नज़र आती है
हर क्षण उड़ती और घुटन का अहसास
देती हुई

वह जालीदार चेहरा
जिसे तुमने बर्रं के छत्ते की तरह
बहुत सावधानी से
बुना था
कि उसमें उलझकर एक बार
कोई लौट न सके बाहर
अब तुम्हारे काबू से
बाहर निकल गया है यकायक
और अपने ही धोखे में
गिरता जा रहा है !

थकान

गुलामों के
इस बाज़ार में
गुलाम हूँ कि बाजार हूँ
मैं

टाइपराइटर की टपटपाहट
के बावजूद
एक नि:शब्द नोंक मुझमें
गड़ी हुई है
पड़ी हुई है बिच्छू के डंक-सी

जहर उस डंक में
है
कि मेरे संसार में

हर बार
अपनी जलती हुई छाया को
पीछे छोड़कर
भागते रहने का यह सफ़र
कब खत्म होगा
एक सपना और उसके भीतर

दूसरा सपना

यह क्या हो रहा है
मैं चल रहा हूँ
कि सिर्फ़ सपना चल रहा है
कि निगलता जा रहा है मुझे
रास्ता

लेकिन कृतज्ञ हूँ
हवा के प्रति
कि जाने कहाँ से ले आती है वह
एक लाल फूलों की डाल
और आँख में लहरा जाती है !

तीसरा अंक

झकाझक झक मारती हुई
बत्तियाँ
जलाकर और तमाम
कपड़े उतारकर
सो रही है रात
तिलचट्टे
सड़कों पर आ गये हैं

दिन भर
जहाँ चिड़िया के पीछे
लपक-झपककर
चालाकियाँ बिछा रहा था बिलाव
अब एक शानदार मसहरी
तनी हुई है
और बिस्तर पर निढाल
पड़ा हुआ फोन
एक आदमी के अन्तिम अँधेरे से
बातें कर रहा है

बच्चों के सिरहाने
रखी हुई ईख उठाकर सूँड़ में

ले आये है देशरत्न हायी और उन्हें
इस तरह तोड़कर
खा रहे हैं कि तिलचट्टे तक
अश्लील और
हतप्रभ होकर
मूँछें हिला रहे हैं
हवाखोरी में ऐसा दृश्य
कब-कब देखने को मिलता है

वत्तियों पर जमी हुई ओस धीरे-धीरे
भाप बन रही है
कील में टँगा हुआ कुरता फड़फड़ाकर
फट गया है कील से और देहरी लाँघ
बाहर निकलने के लिए बेचैन है !

मणि मधुकर

।। जन्मतिथि : ६ सितम्बर १९४२ ।। राजस्थान विश्वविद्यालय से प्रथम स्थान लेकर हिन्दी में एम. ए. और फिर पत्रकारिता ।। 'कल्पना' (हैदराबाद) और 'अकथ' (जयपुर) जैसे साहित्यिक पत्रों के बाद, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी की 'रंगयोग' एवं ललित कला अकादमी की 'आकृति' पत्रिकाओं का सम्पादन ।। साथ ही नुक्कड़ और मंच पर अनेक नाटक खेले, चित्रवीथियों में थियेटर वर्कशाप चलाया, काव्य-प्रस्तुतियों के लिए प्रयोग किये और दूरदर्शन के लिए छोटी फिल्में बनायी ।। इन दिनों दिल्ली से प्रकाशित 'समवाय' मासिक के सम्पादक हैं ।।

।। लेखन की शुरुआत राजस्थानी में की, फिर हिन्दी में ।। राजस्थानी में 'पगफेरो' कविता-संग्रह पर साहित्य अकादमी के सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित; 'सफेद मेमने' उपन्यास पर प्रेमचन्द पुरस्कार और 'रस गन्धर्व' नाटक पर कालिदास पुरस्कार प्राप्त ।। अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, जर्मन, पोलिश एवं जापानी में तथा लगभग सभी देशी भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद ।।

।। प्रकाशन ।। कविता-संग्रह : खण्ड खण्ड पाखण्ड पर्व, घास का घराना, बलराम के हजारों नाम ।। उपन्यास : सफेद मेमने, पत्तों की बिरादरी ।। कहानी-संग्रह : हवा में अकेले, भरत मुनि के बाद, त्वमेव माता ।। नाटक : रस गन्धर्व, बुलबुल सराय, दुलारी बाई, पोलमपुर ।। रिपोर्ताज : सूखे सरोवर का भूगोल ।। बाल-उपन्यास : सुपारीलाल ।। बाल-काव्य : अनारदाना ।। सम्पादन : अपने आसपास ।। जीवनी : ज्योर्जी दिमित्रोव ।।